मान मंदिर बरसाना

मासिक पत्रिका, वर्ष १०, अंक ०५, श्रीकृष्ण सं ५२५२, 'वैशाख-ज्येष्ठ' वि.सं. २०८३ (मई २०२६ ई.) मूल्य १०/-

अक्षय तृतीया उत्सव : श्री राधामानविहारीलाल जी के चरण दर्शन

अक्षय तृतीया उत्सव : श्री अक्षययुगल सरकार जी के चरण दर्शन

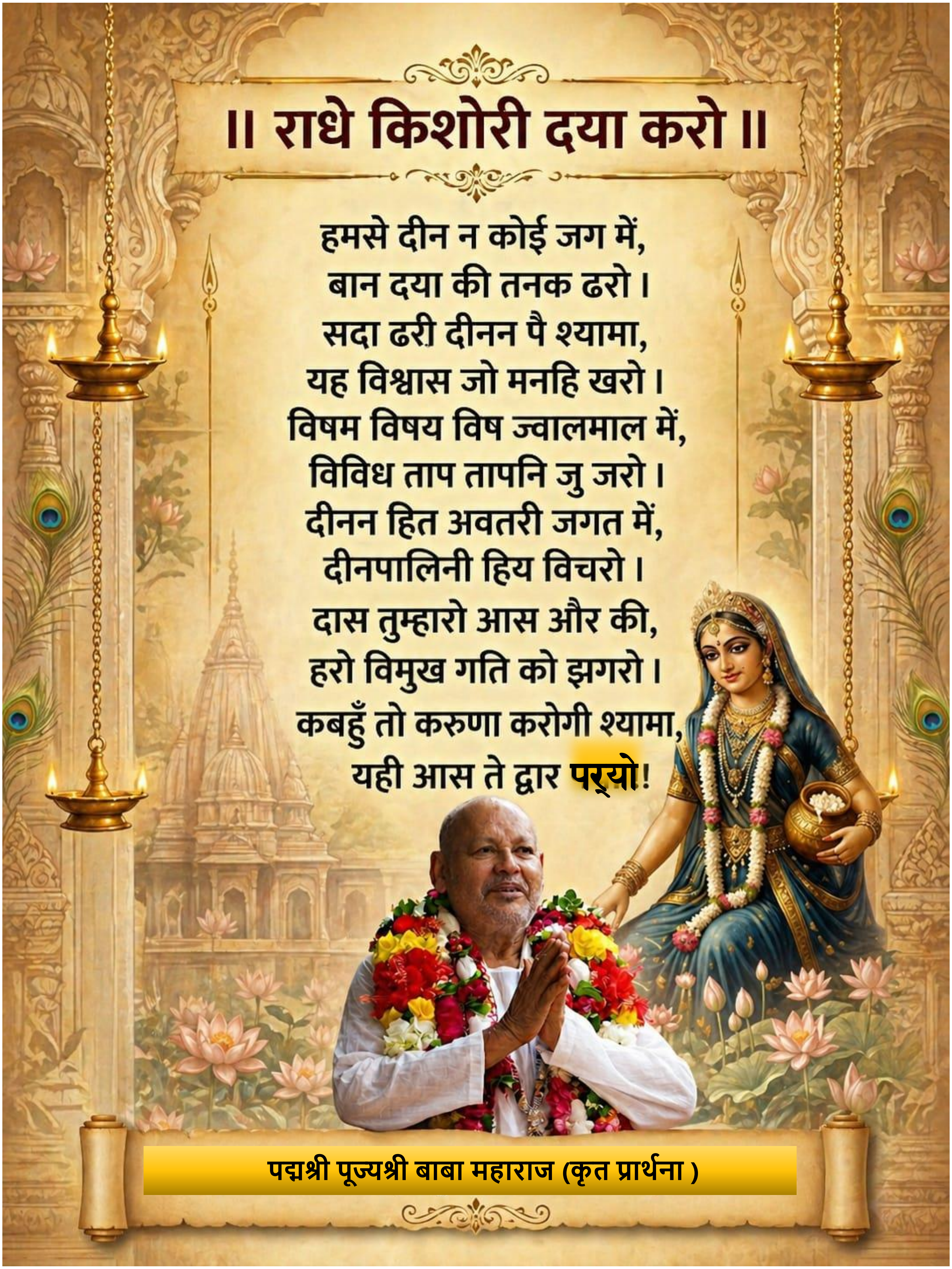
॥ राधे किशोरी दया करो ॥
हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो!
पद्मश्री पूज्यश्री बाबा महाराज (कृत प्रार्थना)

विषय-सूचिका

क्रमांक	प्रसंग	पृष्ठांक
१	श्रीकरुणामयी स्वरूपा 'ब्रजभूमि'	०६
२	परम जननी 'गौमाता'	१०
३	वास्तविक भक्तियोग 'निष्काम कर्म'	१५
४	विकर्म से भवबन्धन	१७
५	श्रीसीताजी की 'भक्ति-शक्ति'	२१
६	विशुद्ध प्रेम का स्वरूप	२५
७	गुणातीत ही पराभक्ति	२८
८	भक्तिमती श्रीवृन्दाप्रियाजी का साक्षात्कार	३३

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें। हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया

INSTALL करें --- PLAY STORE से----- MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से

FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन live व d-live प्रसारण देख सकते हैं।

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**, प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर ,गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
mob. राधाकांत शास्त्री ....9927338666, Website :www.maanmandir.org,
(E-mail :info@maanmandir.org)

इस पत्रिका को आप google chrome पर जाकर सीधे free download कर सकते हैं आपको केवल इतना सर्च करना है- हमारे बारे में। मान मंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट (यहाँ से आप पत्रिका सीधे download कर सकते हैं) मान मंदिर से प्रकाशित अन्य साहित्य (पुस्तकें) आप यहाँ से download कर सकते हैं – Download Maan Mandir Publications (books) FREE

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें, जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ। जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि।।(श्रीमद्भागवत ३/७/४१) अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुडाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है; समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता।

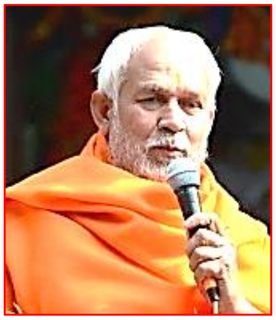

प्रकाशकीय

अपने इष्ट के चरणों से अनुराग करो । भगवान् के चरणों की शरण में गये बिना किसी भी साधन से माया को नहीं जीता जा सकता, क्योंकि एक तो ये माया दुस्तर है, दूसरा हमारा साधन भी सीमित है । किन्तु यदि भगवान् की कृपादृष्टि पड़ जाए तो निश्चित वहाँ से माया भाग जाएगी । भगवान् का स्वभाव है कि वह अपने आश्रित के दोष नहीं देखते और यदि उसमें थोड़ा-सा भी गुण होता है तो प्रभु उसी से रीझ जाते हैं । तुम पापी हो, पुण्यात्मा हो, भले हो, बुरे हो, ये सब मत सोचो; ऐसा सोचना तुम्हें दुर्बल बना देगा । केवल प्रभु के चरणों का ध्यान करो, उनके चरणों के आश्रय से अनन्त पाप नष्ट हो जाते हैं । हमें सिर्फ इतना सोचना है कि हम उनके चरणों में कैसे जायें ? महत्व भले या बुरे का नहीं है अपितु इस बात का है कि हम जैसे भी हैं प्रभु के हैं । इसी बात को सूरदास जी ने अपने पद में कहा कि – **'जो हम भले बुरे सो तेरे । सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ करि चरन गहेरे ॥'** हम किसी और के नहीं हैं । हमको किसी और से लेना-देना नहीं है । भगवान् का तो विरद है कि चाहे कोई सारे संसार का द्रोही है, सारे संसार का कत्ल करके आया है, तब भी उसे नहीं त्यागते । **'सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा । बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥'** तुमने सुना होगा कि एक बार अमेरिका ने जापान में बम गिराया था । जो व्यक्ति हवाई जहाज से बम को गिराने के लिए गया था, जब उसने बम गिरा दिया तो वह दूर से दूरबीन में देखने लगा कि क्या हुआ ? वहाँ से उसने देखा कि लाखों लोग तड़फ रहे हैं । जहरीली गैस से लोगों का दम घुट रहा है और वे तड़प-तडप कर मर रहे हैं तो यह देखकर वह व्यक्ति पागल हो गया क्योंकि उसने विश्व-द्रोह किया था । श्रीभगवान् कहते हैं कि अगर तुम इतने बड़े पापी भी हो कि विश्व से द्रोह करके आये हो, परन्तु यदि तुम मेरी शरण में आ जाओ तो तुरन्त उसी समय क्षमा कर दिये जाओगे । भगवान् इतने बड़े क्षमाशील हैं कि तुम जैसे भी हो यदि भगवान् की शरण में आ गये तो जैसे लोहा पारस के स्पर्श से सोना बन जाता है, वैसे ही तुम भी उसी समय सोना बन जाओगे अर्थात् तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जाएँगे । भगवान् की शरणागति श्रीगौमाता की कृपा-आशीर्वाद से बहुत शीघ्र मिलती है अर्थात् गौवंश की सेवा करना साक्षात् भगवान् की कृपा को प्राप्त करना है । गाय तो स्वयं भगवान् की भी इष्ट है, वे गौसेवाराधना नित्य धाम व अवतरित धाम में भी करते हैं । 'श्रीगौमाता' का 'सम्मान-संरक्षण' व 'सेवा-भक्ति' केवल धराधाम में ही नहीं अपितु नित्य धाम में भी सदा से होती आ रही है । गौवंश की सर्वाधिक महिमा होने के कारण नित्य श्रीधाम का नाम ही 'गोलोक' है । 'गौ-महिमा' के सम्बन्ध में इससे बड़ा प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या होगा ? जिस गौवंश की सेवा स्वयं श्रीश्यामसुन्दर करते हैं, गौ-सेवा के लिए ही गोपाल बनकर गौचारण-लीला करते हैं । इसलिए हम सबसे करबद्ध प्रार्थना करते हैं कि हम सब लोगों को गौवंश के सम्मान-संरक्षण-संपोषण-संवर्द्धन के लिए यथायोग्य तन-मन-वचन से सर्वात्मसमर्पित होकर 'गौ-सेवा' अवश्य ही करनी है । यदि ब्रजभूमि में गौसेवा की सच्ची जाग्रति होती है तो उससे भारतवर्ष व अखिल विश्व पर परम मंगलकारी विशेष प्रभाव पड़ता है क्योंकि गौमाता ही चराचर सृष्टि की परम कल्याणमयी जननी है । इसलिए श्रीगौवंश के संरक्षण हेतु हम सबको एक जुट होकर एकता के सूत्र में बँधकर हर तरह से सम्पूर्ण सहयोग व समर्थन अवश्य ही करना है ।

कार्यकारी अध्यक्ष

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीकरुणामयी स्वरूपा 'ब्रजभूमि'

बाबाश्री के प्रातःकालीन-सत्संग '२/२/१९९९' से संकलित

संकलनकर्त्ता – अध्यक्ष – डॉ. श्रीरामजीलालजी शास्त्री,

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

वृन्दानि सर्वमहतामपहाय दूराद् – वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः । सत्तारणीकृत सुभाव सुधारसौघं राधाभिधानमिह दिव्य निधानमस्ति ॥ (श्रीराधासुधानिधि – ८)

समस्त महत्-वृन्दों का आश्रय दूर से ही छोड़ दे और धाम का आश्रय कर ले । इस धाम के आश्रय मात्र से 'श्रीराधिका' नाम की दिव्य निधान, रस की निधान प्राप्त हो जाती हैं; यह धाम की महिमा है । श्रीधाम भगवान् की अद्भुत कृपा का इस श्लोक में वर्णन किया गया है । प्रस्तुत श्लोक में जो संत-महापुरुष श्रीधामनिष्ठा या धामवास के प्रति बाधक हैं, उन्हें छोड़ने की बात कही गई है, लेकिन किसी में भी अभाव करने की बात नहीं कही गई है । 'श्रीधाम' ऐसी दुर्लभ वस्तु है, इसके लिए समस्त महत्-वृन्दों (भक्त-संतजनों) को छोड़ने की बात कही गयी है । अपने कामाचार के लिए संतों को नहीं छोड़ना है । अपने मनमानेपन के लिए, विकर्म करने के लिए महत्-वृन्दों (संत-महापुरुषों के समूह) को नहीं छोड़ना है, यह सब समझना चाहिए । यदि ऐसा करते हैं तब तो यह अपराध है । लक्ष्य क्या है ? कामचारिता लक्ष्य नहीं है । शास्त्र विधि को भी छोड़ा जाता है परन्तु कामचारिता के लिए शास्त्र विधि को छोड़ा गया तो अपराध है और निष्ठा के लिए छोड़ा गया तो वह भूषण है । लक्ष्य की अलग-अलग बातें होती हैं । ब्रजगोपियों ने कृष्ण के लिए सब कुछ छोड़ दिया, वेदमार्ग छोड़ दिया तो कृष्ण के लिए ही तो छोड़ा था, अतः वह छोड़ना भूषण बन गया । इन्हीं ब्रजदेवियों की चरणरज पाने के लिए ब्रह्माजी ने साठ हजार वर्षों तक तप किया था । लौकिक-वैदिक आदि समस्त मार्गों को छोड़ने के बाद गोपियाँ ब्रह्माजी की भी पूज्य बन गयीं । यदि कहा जाए कि गोपियों ने धर्म छोड़ा, सदाचार छोड़ा तो यह व्यभिचार हो गया । हो जाने दो व्यभिचार । भागवत में उद्धवजी ने गोपियों के बारे में कहा – **'क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः'** – (भा.१०/४७/५९) शास्त्र द्वारा प्रतिपादित आचरण को छोड़ना व्यभिचार है । इसलिए शास्त्र प्रतिपादित आचरण त्याग रूप व्यभिचार दोष से दूषित होने के कारण गोपियों के लिए व्यभिचारदुष्टाः शब्द का प्रयोग किया गया है । व्यभिचार से दूषित थीं गोपीजन परन्तु ब्रह्मा-शिवादि बड़े-बड़े देवताओं की भी वे पूज्य बन गयीं । इतनी ऊँचाई पर वे पहुँच गयीं, इसका कारण था । किसके लिए उन्होंने लोक और वेद का परित्याग किया, यह प्रश्न है । कामचारिता के लिए उन्होंने नहीं छोड़ा था । गीता में भगवान् ने कहा है – **'यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।**

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥' (श्रीगीताजी १६/२३)

शास्त्र विधि को जो कामचारिता के लिए छोड़ता है, वह अपराधी है, दोषी है, वह पकड़ा जायेगा । यदि अपनी अनन्यता के लिए, अपनी निष्ठा के लिए कोई शास्त्र विधि को छोड़ता है तो वही व्यभिचार 'भूषण' बन जाता है । ऐसा 'भक्त' ब्रह्माजी से भी पूज्य हो जाता है ।

'श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे' (श्रीराधासुधानिधि – ८) इस श्लोक के प्रारम्भ में 'श्रीराधे' क्यों कहा गया है ? श्रीराधिकारानी ही श्रीजी हैं । लक्ष्मीजी को भी 'श्री' कहते हैं । लक्ष्मीजी स्वयं भगवान् का आश्रय लेती हैं तो वहाँ भाव है – 'श्रयते इति श्री' – जो स्वयं भगवान् का आश्रय लेती हैं । जब लक्ष्मीजी समुद्रमंथन से प्रकट हुईं तो सभी चाहने लगे कि ये हमको वरण करें । लक्ष्य धातु से लक्ष्मी शब्द बना है – लक्ष्यन्ते जनैः इति लक्ष्मी । सब लोग संसार में लक्ष्य बाँधकर बैठे हैं कि लक्ष्मी हमें मिलें । यहाँ तक कि लोग साधु बनकर भी सोचते हैं कि हमें इतनी दक्षिणा मिलनी चाहिए, इस प्रकार सबका लक्ष्य लक्ष्मी बन जाती हैं । कीर्तन करने वाला भी पैसा माँगता है, कथा करने वाला भी पैसा माँगता है

क्योंकि लक्ष्मीजी ऐसी ही हैं कि सबका लक्ष्य बन जाती हैं । समुद्र मन्थन से प्रकट होकर लक्ष्मीजी सबको छोड़कर भगवान् की शरण में गयीं, भगवान् का उन्होंने आश्रय लिया तो क्या राधारानी भी ऐसी ही हैं ? नहीं, वहाँ तो लक्ष्मीजी श्रीहरि के चरण दबाती हैं, उनका आश्रय लेती हैं तथा पादसेवन भक्ति की भी वे आचार्या हैं । वे जानती हैं कि भगवान् के चरणों को कैसे दबाया जाए ? लक्ष्मीजी अनन्त दिव्य गुणों की अधिष्ठात्री देवी हैं । सौन्दर्य की ही देवी वे नहीं हैं बल्कि सद्गुणों की भी देवी हैं, मृदुता की भी देवी हैं । वे बड़ी कोमलांगी हैं, मधुरता की देवी हैं तब जाकर वे पाद सेवन भक्ति की आचार्य बनी हैं । उनको पता है कि चरणों को कैसे दबाया जाता है, अन्य कोई नहीं जानता है । भगवान् ने लक्ष्मीजी से लम्बे समय तक चरण दबवाए तो उन्हें यह विद्या प्राप्त हो गयी कि कैसे चरण दबाया जाता है । विद्या सीखकर फिर कहीं उसका प्रयोग करना पड़ता है तो भगवान् सोचने लगे कि अब हम किसके चरण दबाएँ तभी तो पता पड़ेगा कि इस कला में हम कुशल हुए कि नहीं । कहीं ऐसा तो नहीं कि इस कला में मैं बुद्धू ही रह गया । लक्ष्मीजी सोचती हैं कि मैंने जो भगवान् के चरण दबाये हैं तो मुझसे अधिक कुशलता से कौन चरण दबा सकता है और मुझसे अधिक इस विद्या को कौन जानता होगा ? इस बात को लेकर लक्ष्मीजी को थोडा गर्व भी था । भगवान् भी समझ गये कि लक्ष्मीजी पाद सेवन भक्ति की आचार्य हैं और इनकी तरह चरण सेवा कोई कर ही नहीं सकता, कोई इसे जानता ही नहीं है परन्तु जब श्यामसुन्दर ब्रज में आये तो लक्ष्मीजी के चरण दबाने के लाड़-प्यार को वे भूल गये । भागवत में श्रीशुकदेवजी कहते हैं –

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।
रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ (श्रीभागवतजी १०/१५/१९)

ये कृष्ण कौन हैं ? जरा इसे समझो । इनको केवल इतना ही मत समझ लेना कि ये ग्वारिया गँवार हैं । ये कृष्ण तो वे हैं – रेमे रमालालितपादपल्लव – लक्ष्मीजी ने इनके चरणकमलों से बहुत लाड़ लड़ाया, बहुत प्रेम से इनके चरण दबाये हैं । लक्ष्मीजी ने अपनी सारी विद्या लगा दी भगवान् के चरणों की सेवा करने में और फिर वे सोचने लगीं कि क्या मेरे समान चरण सेवा कोई कर सकता है ? भगवान् उनके मन की बात समझ गये । इसके बाद जब ब्रज में प्रेम की गंगा बही तो जिन चरणों को लक्ष्मीजी अत्यन्त प्रेम से दबाती थीं, उन्हीं चरणकमलों से श्यामसुन्दर नंगे पाँव ब्रजभूमि में दौड़ने लगे । ऐसा क्यों हुआ, ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि लक्ष्मीजी के स्पर्श से कोटि गुना अधिक सुख उन्हें ब्रजरज के स्पर्श से मिला । इसीलिए भागवत के उपरोक्त श्लोक में कहा गया – 'रेमे' अर्थात् इस ब्रजभूमि में भगवान् ने रमण किया । लक्ष्मीजी के लाड़-प्यार को छोड़कर वे ब्रज की धूल में रमण करने लगे । ऐसा यह धाम है । शुकदेवजी कहते हैं कि जिन भगवान् के चरणों को सुन्दरता, कोमलता की देवी लक्ष्मीजी छूने में भी डरती थीं कि इनके इतने कोमल चरण हैं, इन्हें मैं अपने हाथों से कैसे दबाऊँ, उन चरणों से भगवान् ब्रज की धूल में दौड़ने लगे । ऐसा क्यों हुआ ? ऐसा इसलिए हुआ कि एक आदमी गुड़ बहुत खाता था । एक बार गुड़ की जगह उसको रसगुल्ला खाने को मिल गया तो उसने गुड़ को छोड़ दिया । यह सीधी सी बात है । लक्ष्मीजी श्रीकृष्ण के चरण दबाती थीं, वह तो गुड़ था, उस गुड़ को श्रीकृष्ण ने रसगुल्ला, रसमलाई रूपी ब्रजरज के स्पर्श के कारण छोड़ दिया । यह ब्रजभूमि ऐसी रसमयी है, क्यों रसमयी है, इसलिए रसमयी है क्योंकि इस ब्रजधरा पर श्रीराधिकारानी के चरण पड़े हैं । श्रीकृष्ण की द्वारका की रानियों का कुरुक्षेत्र में द्रौपदी से मिलन हुआ तो द्रौपदी ने पूछा कि आप लोग क्या चाहती हैं तो द्वारका की रानियाँ बोलीं कि हम चाहती हैं कि हमें ब्रजरज मिल जाये । **व्रजस्त्रियो यद् वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः । गावश्चारयतो गोपाः पदस्पर्शं महात्मनः ॥** (भा.१०/८३/४३)

ब्रज की गोपियाँ भी इस ब्रजरज को चाहती हैं । वे ब्रजरज को छोड़कर श्रीकृष्ण के पीछे मथुरा और द्वारका नहीं गयीं । ब्रज की ऐसी भूमि है । ब्रज की भीलनियाँ भी इस ब्रजरज को चाहती हैं, जिनके पूर्वजन्म की कथा का सम्बन्ध रामावतार से है । ब्रज के गोप भी ब्रज में श्रीकृष्ण की चरणरज का स्पर्श चाहते हैं । **'गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः'** – (श्रीभागवतजी १०/८३/४३) ऐसा यह ब्रज है । 'यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि' – (श्रीभागवतजी १०/२१/१०) ऐसी ब्रज की महिमा क्यों है, लक्ष्मीजी के कारण नहीं है । लक्ष्मी का वाहन तो उल्लू है । उल्लू लोग पैसे की कीमत को मानते

हैं । ब्रज की कीमत उल्लू नहीं करेगा । उल्लू तो अन्धकार चाहता है । पैसा क्या है ? यह अन्धकार है । लक्ष्मी तो हम जैसे उल्लुओं के लिए बहुत कीमती चीज है । जो हंस हैं, भगवान् के प्रेमी हैं, वे उल्लू नहीं होते हैं ।वे इस ब्रज रज को चाहते हैं, क्यों चाहते हैं ? क्योंकि यहाँ ब्रज में लक्ष्मी नहीं है, यहाँ भगवान् का प्रेम है । वृन्दावन की महिमा यही है ।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ (श्रीभागवतजी १०/२१/१०)

भागवत के वेणुगीत में ब्रजगोपिकायें कहती हैं – इस ब्रजरज को देखो, 'देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि' – श्रीकृष्ण के चरणों की समस्त श्री, श्रीकृष्ण के चरणों की समस्त रसाम्बुधनिधि इस रज को प्राप्त हुई है । यह ऐसी भूमि है । इसीलिए भगवान् लक्ष्मीजी के द्वारा अपने चरणों का लालन-पालन भूल गये और ब्रजरज में दौड़ने लगे तो लक्ष्मीजी के मन में जो भाव था कि मेरे समान प्रभु के चरणकमलों का लालन-पालन कोई नहीं कर सकता, वह गलित हो गया जब उन्होंने देखा कि ये तो ब्रज रज में रमण करने लगे । भागवत के श्लोक १०/१५/१९ में प्रयुक्त शब्द 'रेमे' का सम्बन्ध ब्रजभूमि से है, किसी ब्रजगोपी से नहीं है । 'एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं .....' 'गोपात्मजत्वम्' – यह शब्द सख्य लीला के वर्णन में आया है । रेमे का अर्थ किसी गोपी के साथ रमण नहीं है । ग्वारिया बनकर गो चारण करके इस ब्रजभूमि में श्यामसुन्दर यहाँ की रज में रमण कर रहे हैं । यहाँ की ऐसी भूमि है । यहाँ की रज की ऐसी महिमा है । 'रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः' 'रेमे' का अर्थ गोपियों के साथ नहीं बल्कि गँवार ग्वारियाओं के साथ इस ब्रजभूमि में श्रीकृष्ण घूम रहे हैं । अपनी ईशता, अपनी भगवत्ता छोड़कर भगवान् यहाँ विचरण कर रहे हैं, ऐसी यह प्रेम की भूमि है, जहाँ प्रेम को बिखेरते, प्रेम को चखते-चखाते, आस्वादन करते, रस को पिलाते-पीते हुए इस रसभूमि में विहार हो रहा है । इस भूमि के साथ विहार हो रहा है । इसे देखकर लक्ष्मीजी का गर्व गलित हो गया कि मैं ही भगवान् के चरणों को दबा सकती हूँ । इसके अतिरिक्त श्यामसुन्दर ने उन्हें दिखा दिया कि तुम इतना सुन्दर चरण दबाना नहीं जानती हो, इस कला को तो मैं जानता हूँ । मैं दिखाता हूँ, कैसे ? श्यामसुन्दर राधारानी के पास आये और यहाँ परिभाषा बदल गयी । लक्ष्मीजी के साथ तो यह परिभाषा थी – 'श्रयते हरिं इति श्री' – जो सब कुछ छोड़कर भगवान् का आश्रय लेती हैं किन्तु राधारानी के साथ परिभाषा इस प्रकार बदली – 'श्रियते हरिणा' – स्वयं श्रीकृष्ण आकर राधारानी का आश्रय लेते हैं । इसलिए उनको 'श्री' कहा गया । **'राधायाः पदयोर्लुठत्यलममुं जाने महा लम्पटम् ।'** (श्रीराधासुधानिधि - २३३) श्रीराधासुधानिधि के इस श्लोक के अनुसार श्रीकृष्ण 'राधारानी' के चरणों में लोटते हैं, उनके चरणों का संवाहन करते हैं । **'राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे ।'** (श्रीराधासुधानिधि - २००) अपने मयूर पंख से राधारानी के चरणारविन्द को श्रीहरि झाड़ते हैं, इसीलिए यहाँ श्रियते हरिणा कहा गया । उसके बाद श्रीकृष्ण ने अपनी कला दिखाई कि देखो, चरण ऐसे दबाया जाता है । राधिकारानी ही श्रीकृष्ण से अपने चरण दबवा सकती हैं । द्वारका की महिषियों में ऐसी सामर्थ्य नहीं है । वे तो श्रीकृष्ण के सिर में भयंकर दर्द होने पर उसके उपचार हेतु अपनी चरणरज देने में ही डर गयी थीं । यह सामर्थ्य उनमें नहीं थी । यह सामर्थ्य तो राधारानी में ही है । **'राधे जू के चरण पलोटत मोहन ।'**

श्रीश्यामसुन्दर दिखा रहे हैं कि लक्ष्मीजी मेरे चरण को दबाती थीं, उस रस को छोड़कर मैं ब्रज में राधिकारानी के चरण-संवाहन के लिए आया हूँ । उन्होंने दिखाया कि इस कला का मैं ही आचार्य हूँ । श्यामसुन्दर दिखा रहे हैं कि नवधा भक्ति में लक्ष्मीजी को पाद संवाहन भक्ति का आचार्य माना गया है किन्तु श्यामसुन्दर बता रहे हैं – नहीं-नहीं, इसका आचार्य भी मैं ही हूँ । किसी विद्यार्थी की क्रियात्मक परीक्षा तभी होती है, जब परीक्षक उससे श्रेष्ठ हो । श्यामसुन्दर यहाँ विद्यार्थी हैं, किशोरीजी के चरण दबा रहे हैं और परीक्षिका के रूप में उनसे श्रेष्ठ किशोरीजी बैठी हैं । इस रस के लिए श्यामसुन्दर ने रमा से लालित चरणारविन्दों के रस को छोड़ दिया । श्यामसुन्दर श्रीजी के चरणों को कैसे दबा रहे हैं, उनकी कला को देखिये । इसके पहले लक्ष्मीजी भगवान् के चरणकमल कैसे दबाती हैं, इसका वर्णन भागवत के तीसरे स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में किया गया है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रामचरितमानस में लिखा है कि भगवान् राम

के चरणकमल इतने कोमल थे कि सीताजी और लक्ष्मणजी के कोमल हाथ भी उनको छूने में डरते थे किन्तु इन सब कलाओं को पीछे करके श्रीकृष्ण ने दिखाया कि चरण ऐसे दबाये जाते हैं । यह लक्ष्मीजी से भी आगे की कला है जो श्यामसुन्दर यहाँ दिखा रहे हैं, दिखा नहीं रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं ।

'राधे जू के चरण पलोटत मोहन । नीलकमल के दलन लपेटे, अरुण कमल अति सोहन ।'

भागवत के तीसरे स्कन्ध में वर्णन है कि लक्ष्मीजी भगवान् के चरणकमल दबा रही हैं । लक्ष्मीजी के करकमल भगवान् के चरणों के ऊपरी भाग को छू रहे हैं, नीचे के भाग तो शेषशैय्या को स्पर्श कर रहे हैं । वह भाग दबाये जाने से वंचित रह जायेगा परन्तु श्यामसुन्दर ने जब राधिकारानी के चरण दबाये तो पहले उनके चरणकमलों को सम्पूर्ण रूप से अपने हाथों में ले लिया ताकि शय्या का स्पर्श न रहे । किशोरी जी के चरण श्यामसुन्दर के हाथों में अच्छी तरह लिपट गये अर्थात् नीचे भी श्रीकृष्ण के करकमल हैं और ऊपर भी उनके करकमल हैं । इस प्रकार चरणों को दबाया जाता है । नीचे से भी संवाहन हो रहा है और ऊपर से भी संवाहन हो रहा है । यह कला है । श्री भट्ट जी का यह पद है । वे कहते हैं कि ऐसा मालूम पड़ता है मानो नीलकमल की पंखुड़ियों में अरुणकमल लिपट गया है । श्रीजी के चरणों के जो तलवे हैं, वे अरुण (लाल) वर्ण के हैं और उनमें लाल महावर लगी हुई है । श्रीजी हैं तो गौरांगी किन्तु जो यावक होता है, वह लाल रंग का होता है । यावक की जो चित्रावली बनी हुई है, वह भी लाल रंग की है । वह भी श्रीकृष्ण के द्वारा बनायी गयी है । श्रीकृष्ण ने तूलिका लेकर श्रीजी के चरणों पर चित्र बनाये थे । कब बनाये, क्या चोरी से बनाये, नहीं-नहीं, श्रीकृष्ण का तो खुला काम है, कोई लज्जा-शर्म का काम नहीं है । यह तो प्रेम मार्ग है । अनेक गोपिकाओं के बीच में बैठकर अपनी प्रियतमा आत्मस्वरूपा श्रीराधिकारानी की सेवा करते हैं ।

कामं तूलिकया करेण हरिणा यालक्तकैरङ्किता नानाकेलिविदग्धगोपरमणीवृन्दे तथा वन्दिता ।
या सङ्गुप्ततया तथोपनिषदां हृद्येव विद्योतते सा राधाचरणद्वयी मम गतिर्लास्यैकलीलामयी ॥ (रा.सु.नि. – २०५)

यह विद्या वेदों में गुप्त है, जिसे आज तक वेद भी नहीं जान पाये । कोई नहीं जान पाया । भगवान् के अनन्य भक्त भी इस रस को नहीं जान पाये ।

न देवैर्ब्रह्माद्यैर्न खलु हरिभक्तैर्न सुहृदादिभिर्यद् वै राधामधुपतिरहस्यं सुविदितम् । (श्रीराधासुधानिधि - १४८)

देवताओं को छोड़ दो, ब्रह्मा आदि को छोड़ दो, हरिभक्तों को छोड़ दो, भक्त बनना भी ठीक है किन्तु श्रीराधिकारानी तक तुम नहीं पहुँच सकते, सुहृद अर्थात् श्रीकृष्ण के सखा आदि भी उन तक नहीं पहुँच सकते, यह ऐसा रस है ।

अस्तु, श्रीकृष्ण ने राधिकारानी के चरणकमलों में चित्रावली भी बनायी थी । **'सा राधाचरणद्वयी मम गतिर्लास्यैकलीलामयी'** श्रीराधिकारानी के वे दोनों चरण ही हमारी गति हैं और हमारी कोई गति नहीं है । **'टेढ़े रहें मोहन रसिया सो, बोलत अटपटी बानी ।'** श्यामसुन्दर टेढ़े ठाकुर से तो हम टेढ़े रहते हैं । 'हम हैं राधे जू के बल अभिमानी ।' हमारी गति तो एकमात्र राधारानी हैं । श्रीकृष्ण श्रीराधारानी के चरणकमलों को अपने करकमल में लेकर, लपेटकर इस प्रकार चरण संवाहन कर रहे हैं कि नीचे से भी संवाहन हो रहा है, ऊपर से भी संवाहन हो रहा है; ये है कला । **'नीलकमल के दलन लपेटे, अरुणकमल अति सोहन ।'** श्रीराधारानी का चरण बड़ा सुन्दर लाल कमल के समान है । 'राधे जू के चरण पलोटत मोहन ।' यह केवल चरण दबाना ही नहीं है, चरण दबाना क्या है ? यह प्रेम की सम्प्रेषणीयता की क्रिया है । चरण क्यों दबाया जा रहा है ? चरण दबाने के साथ-साथ अपने हृदय का प्रेम व्यक्त किया जा रहा है । यह चरण दबाना ऐसा नहीं है कि जैसे आटा गूँथा जा रहा हो । चरण दबाना तो प्रेम की एक क्रिया है ।

एक बार एक गुरुजी के दो चेले गुरुजी के एक-एक पाँव दबा रहे थे । एक चेले ने बायाँ पाँव लिया, दूसरे ने दाहिना पाँव लिया । इतने में बायें पाँव पर मक्खी बैठ गयी तो दूसरे चेले ने हाथ लगाकर मक्खी को उड़ा दिया तो पहला चेला बोला कि मेरे हिस्से के पाँव को तूने चाँटा मारा । ऐसा कहकर उसने गुरुजी के दायें पाँव पर घूँसा मार दिया । अब तो दूसरे शिष्य ने बायें पाँव पर डंडा मार दिया । गुरुजी ने पूछा कि तुम लोग ये क्या कर रहे हो ? पहला चेला बोला –

'गुरुजी ! इसने मेरे हिस्से वाली आपकी टांग पर थप्पड़ मारा तो मैंने इसके हिस्से वाली टांग पर घूँसा मार दिया ।' दूसरा चेला बोला – 'मैंने इसके हिस्से वाली टांग पर डंडा मार दिया ।' गुरुजी बोले – 'मूर्खों ! क्या ऐसे ही पाँव दबाया जाता है ?' इसलिए पाँव दबाना तो एक श्रद्धा की क्रिया है । गुरुजी के प्रति पाँव दबाकर श्रद्धा प्रकट की जाती है अथवा यह प्रेमास्पद के प्रति प्रेम प्रकट करने की क्रिया है अन्यथा श्रीराधा-माधव के चिन्मय शरीर में थकावट कहाँ से हो सकती है ? श्यामसुन्दर श्रीजी के चरण कैसे दबा रहे हैं ? **'कबहुँक लै लै नयन लगावत ।'** चरण दबाते-दबाते श्यामसुन्दर श्रीराधिकारानी के मंगलमय चरणारविन्दों को अपने नेत्रों से स्पर्श करते हैं । उनके नेत्र शीतल हो रहे हैं । यह बड़ा ही विलक्षण पद है । अभी तक तो श्यामसुन्दर चरण दबा रहे थे तो श्रीजी को नींद आ गयी । वे बड़ी करुणामयी हैं ।

प्रेयःसङ्गसुधासदानुभविनी भूयोभवद्भाविनी लीलापञ्चमरागिणी रतिकलाभङ्गीशतोद्भाविनी ।
कारुण्यद्रवभाविनी कटितटे काञ्चीकलाराविणी राधैव गतिर्ममास्तु पदयोः प्रेमामृतस्राविणी ॥ (रा.सु.नि. १८१)

श्रीजी के स्वरूप के बारे में सुधानिधि के इस श्लोक में कहा गया है कि उनमें इतनी अधिक करुणा है कि करुणा से उनका सारा वपु पिघल जाता है । उनके नेत्रों से कृपा करने के लिए सदा करुणा के जल बहते रहते हैं । हाथों से करुणा का रस बहता रहता है, उनके चरणों से करुणा का द्रव बहता रहता है । उनका सारा गौराङ्ग दिव्य वपु करुणामय है । रसिक लोग बोले श्रीजी को करुणामयी मत कहो, उनको कारुण्यद्रवभाविनी कहो, उनका सारा वपु करुणा से द्रवरूप हो जाता है, जिसका अभिसिंचन श्रीब्रजरज के रूप में समस्त ब्रजभूमि को मिलता है । इसीलिये श्रीराधिकारानी की साक्षात् कृपा-करुणा श्रीब्रजधाम से सहज ही प्राप्त हो जाती है ।

परम जननी 'गौमाता'

<u>भावाभिव्यक्ति</u> – परम गौ-सेवी

संत 'श्रीब्रजशरणजीमहाराज'

<u>श्रीमाताजी गौशाला, श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट</u>

गौमाता हमारी ही नहीं, हमारे आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण की भी माता है । माता की उपेक्षा एवं उसकी निरन्तर हत्या से राष्ट्र कलंकित है । भारत को निष्कलंक बनाने के लिए गो सम्मान आह्वान अभियान में सभी भारतीयों की सहभागिता अनिवार्य है । गोमाता राष्ट्र माता बने । गोहत्या पूर्णतया बन्द हो तभी राष्ट्र समृद्ध होगा, सुखी बनेगा । श्रीच्यवन ऋषि ने कहा था – **निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम् । विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति ॥** (श्रीमहाभारत, अनुशासन पर्व ५१/३२)

जिस देश में गायें निर्भय साँस लेती हैं अर्थात् गायों को हत्या, हिंसा आदि का कोई भय नहीं रहता तथा उन्हें खाने के लिए भर पेट चारा उपलब्ध होता है, उस देश के पाप को गोमाता अपनी साँसों के द्वारा खींच लेती है और वह देश समृद्धिशाली होता है, वहाँ आर्थिक समृद्धि होती है तथा चारों ओर खुशियाली रहती है । इसी तरह शास्त्र के अनुसार जिस देश की पृथ्वी पर गाय का रक्त बहता है अर्थात् जहाँ गो हत्या होती है, उस देश का विनाश हो जाता है, वहाँ सदा दुःख-क्लेश और विपत्तियाँ आती रहती हैं ।

भारत में अंग्रेजों के शासन काल में जो सबसे पहला गवर्नर जनरल था – राबर्ट क्लाइव, उसने ही कलकत्ता में सन् १७७५ के लगभग गायों का वध करने के लिए सबसे पहला क़त्लखाना खोला था । क्लाईव और उसके साथी अंग्रेज लोग भारत में सदा-सर्वदा के लिए शासन करने और रहने के लिए आये थे किन्तु गोहत्या के लिए वधिक घरों की स्थापना करने के कारण इन दुष्टों ने अपने ही हाथों अपनी कब्र खोद ली थी । गो वध को भारत में प्रोत्साहन देने का यह परिणाम हुआ कि अंग्रेज इस देश में २०० वर्ष तक शासन करने के बाद यहाँ से पलायन करने को विवश हो गये । इंग्लैंड के अंग्रेज और यूरोपवासी व्यापक पैमाने पर गो माँस का भक्षण करते थे, इन लोगों ने भारत सहित एशिया और अफ्रीका

के अनेक देशों में अपने उपनिवेश बनाकर उन देशों का बुरी तरह से आर्थिक शोषण किया, वहाँ की सारी धन-सम्पत्ति लूटकर यूरोपवासी अपने देशों में ले आये और अत्यधिक विकसित तथा धनी बन गये परन्तु इन्होंने भयंकर पापाचरण किया था, साथ ही ये सभी क्रूरता पूर्वक गायों की हत्या करके उनका माँस खाते थे । इसका यह दुष्परिणाम हुआ कि सन् १९०० के प्रारम्भिक दशक से लेकर १९४५ तक इन आसुरी सभ्यता के देशों को आधुनिक युग के सबसे बड़े दो विश्व युद्धों का सामना करना पड़ा । यूरोप के ये बर्बर देश आपस में ही लड़ते रहे और दो विश्व युद्धों में इनको अपार धन-जन की हानि हुई, इनके उपनिवेश भी इनके हाथ से निकल गये । इनकी सारी भौतिक समृद्धि नष्ट हो गयी और यूरोप में करोड़ों लोगों की मृत्यु हुई । इससे साफ़ पता चलता है कि हमारे शास्त्रों में गो वंश की हत्या का जो दुष्परिणाम बताया गया है, वह पूर्णतया सत्य है परन्तु आधुनिक युग का अर्थ और भोग का लोलुप मानव दानव बनता जा रहा है । धन और इन्द्रिय भोग के लिए वह बुरा से बुरा दुष्कर्म करने के लिए पूरी तरह तैयार बैठा है । अब इस मूढ़ मनुष्य को गाय की महिमा का कोई ज्ञान नहीं रह गया है और यह शास्त्रों में बताये गये गो वंश के महत्त्व को पूरी तरह उपेक्षित करने में लगा है ।

दुनिया में केवल भारत ही ऐसा देश है और सनातन धर्म ही दुनिया का एकमात्र धर्म है, जो गाय के महत्त्व को जानता है, जिसने मानव को गाय की महिमा का महत्वपूर्ण ढंग से बोध कराया है । गाय को माता के रूप में मानकर उसकी उपासना करता है । भारत के अतिरिक्त दुनिया के अन्य सभी देश और धर्म गाय के महत्त्व को नहीं जानते और ये हर तरह से गो वंश के विनाश और गो माँस भक्षण का समर्थन करते हैं परन्तु विश्व में मानव सभ्यता के जनक वेदों में कहा गया है – गावो विश्वस्य मातरः । गाय सम्पूर्ण विश्व की माता है । स्कन्द पुराण में कहा गया है कि यह पृथ्वी सात आधार स्तम्भों पर टिकी हुई है ।

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः । अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ॥ (श्रीस्कन्दपुराण ४/२/९०)

पृथ्वी को धारण करने वाले सात आधार स्तम्भों में हैं – गाय, ब्राह्मण, वेद, सती स्त्रियाँ, सत्यवादी पुरुष, निर्लोभी तथा दानशील मनुष्य । इन सातों में भी गाय का स्थान सर्वप्रथम है । पृथ्वी के अस्तित्त्व की रक्षा के लिए गायों का होना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है परन्तु भारत जैसे गोमाता के उपासक और रक्षक देश के लिए यह बड़े ही कष्ट, दुर्भाग्य और कलंक का विषय है कि आज यह देश बहुत बड़े पैमाने पर गोहत्या करके दुनिया में गोमाँस का सबसे बड़ा निर्यातक देश बन गया है । कहने को यह देश सन् १९४७ से ही अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त हो गया, देश में स्वतन्त्र भारतीय सरकार बनी फिर भी जिन अंग्रेजों ने भारत में गोहत्या के लिए कसाई-खानों की स्थापना की, उन गोहत्यारों के इस देश से सदा के लिए चले जाने पर भी गोहत्या पर कोई प्रतिबन्ध लगाना तो दूर, स्वतन्त्र भारत में उनके द्वारा स्थापित गोवध-स्थलों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है । अंग्रेजों के शासनकाल में स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने वाले लगभग सभी प्रमुख लोगों ने यह संकल्प किया था कि भारत को स्वतन्त्रता मिलते ही सबसे पहले गोवध के कलंक को इस देश से सदा के लिए मिटा दिया जाएगा परन्तु उनका यह संकल्प केवल स्वप्नमात्र रह गया । स्वतन्त्रता के बाद से जिस राजनीतिक पार्टी ने इस देश में सबसे लम्बे समय तक शासन किया, उस पार्टी के प्रधानमन्त्रियों, वरिष्ठ राजनेताओं ने गोहत्या पर अंकुश लगाने के सम्बन्ध में पूरी तरह अपनी आँखें मूँद लीं और गोहत्या को इन लोगों ने बहुत तेजी से बढ़ावा दिया । जिस समय जवाहर लाल नेहरू देश के पहले प्रधानमन्त्री थे और उनसे गो हत्या को बंद करने के लिए संसद में कानून बनाने के लिए कहा गया तो उन्होंने बड़ी ही बेशर्मी के साथ स्पष्ट कह दिया कि हमारे लिए गाय और घोड़ा एक बराबर हैं । उस समय भारत के प्रमुख संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी ने सन्त होने के बावजूद भी गोरक्षा के लिए नेहरू के विरुद्ध चुनाव लड़ा था किन्तु उस समय भारत की जनता में नेहरू अधिक लोकप्रिय थे, इसलिए गो भक्ति से विमुख जनता ने भारी मतों से नेहरू को ही विजयी बनाया और प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी को बुरी तरह पराजय का सामना करना पड़ा । इस शर्मनाक घटना के बाद से गोरक्षा का विषय सत्ता पक्ष के द्वारा पूरी तरह से उपेक्षित कर दिया गया और भारतीय जनमानस भी गोरक्षा के सन्दर्भ में पूरी तरह उदासीन हो गया । इसका यह परिणाम हुआ कि गोवंश की हत्या के लिए पूरे देश में

नये-नये क़त्ल खाने खोले गये और गोहत्यारे कसाइयों को सरकार के द्वारा पूरी तरह से समर्थन और संरक्षण मिलता रहा तथा इस तरह देश में नृशंसतापूर्वक गो हत्या में वृद्धि होने लगी और विदेशों को गो माँस के निर्यात में बहुत अधिक वृद्धि हो गयी । गो हत्या का समर्थन करने के कारण ही सन् १९६२ में नेहरू के नेतृत्त्व में भारत की चीन के विरुद्ध युद्ध में लज्जाजनक पराजय हुई और आगे चलकर इसी सदमे से नेहरू की मृत्यु भी हो गयी ।

शास्त्रों में लिखा है कि जिस देश में शासक वर्ग के द्वारा गोरक्षा और गोसेवा की जाती है, वहाँ देश की रक्षा एवं शत्रु के विरुद्ध विजय के लिए सेना रखने की कोई आवश्यकता नहीं होती । गोसेवा के प्रताप से स्वतः ही उस देश की रक्षा होती है । इसका प्रबल प्रमाण है महाभारत की घटना । जिस समय कौरवों की दुष्टता के कारण पाण्डवों को १२ साल के लिए वनवास और एक साल के लिए अज्ञात वास में रहना पड़ा था । उस समय कौरवों को पाण्डवों के बारे में कुछ पता नहीं चल रहा था । जब दुर्योधन ने भीष्म पितामह से इस बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि जिस देश में गायों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हो रही हो, गायों की अच्छी तरह सेवा होती हो और गोरस (गाय के दूध-दही) का पर्याप्त मात्रा में सेवन होता हो, पाण्डव उसी देश में होंगे । कौरवों ने पूरे भारत में पता लगाया तो यह ज्ञात हुआ कि राजा विराट के यहाँ भारत में सबसे अधिक गायें हैं और वहाँ गोवंश की बहुत बढ़िया सेवा होती है । इस तथ्य से कौरवों ने अनुमान लगाया कि पाण्डव वहीं होंगे और फिर तो भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और कर्ण जैसे महारथियों के नेतृत्त्व में कौरवों ने राजा विराट के नगर पर हमला कर दिया और वहाँ से गायों का हरण करके ले जाने लगे क्योंकि उनको पता था कि पाण्डव गो भक्त हैं, वे गायों का हरण होने पर उनकी रक्षा के लिए अवश्य लड़ने के लिए आयेंगे । जिस समय कौरवों ने राजा विराट की अत्यन्त विशाल गोशाला पर आक्रमण किया और गायों को जबरन वहाँ से निकालकर ले जाने लगे तो राजा विराट भयभीत हो गये और वे कौरवों से लड़ने का साहस नहीं कर सके क्योंकि उन्हें पता चला कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, और कर्ण जैसे महारथियों ने हमला किया है और उनसे युद्ध करना मृत्यु के मुख में जाना है । राजा विराट की हताशा और अपार संख्या में गायों के अपहरण को पाण्डवों ने देखा तो उनसे सहन नहीं हुआ और उस समय अर्जुन, जो उस समय बृहन्नला (नपुंसक) के रूप में राजा विराट की पुत्री को संगीत की शिक्षा दे रहे थे, उन्होंने राजा विराट से कहा कि मैं कौरवों से युद्ध करूँगा और गायों को उनसे मुक्त कराकर लाऊँगा । राजा विराट के विरोध करने पर अर्जुन ने अपना और अपने भाइयों का परिचय दे दिया कि हम लोग पाण्डव हैं और मैं महाधनुर्धर अर्जुन हूँ । अर्जुन का परिचय पाकर राजा विराट को विश्वास हो गया कि ये कौरवों से मेरी गायों को मुक्त कराकर ले आयेंगे । उस समय अर्जुन अकेले ही कौरवों से युद्ध करने के लिए निकल पड़े और उन्होंने भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और कर्ण जैसे महारथियों को अकेले ही पराजित कर दिया और राजा विराट की गायों को उनसे छुड़ाकर नगर में ले आये । इस घटना से यह पता चलता है कि यह शास्त्र वचन पूर्णतया सत्य है कि केवल गायों की सेवा करने पर राजा को बिना सेना रखे ही अत्यन्त बलशाली शत्रु पक्ष के विरुद्ध विजय प्राप्त होती है । गोरक्षा के उद्देश्य से लड़ने के कारण अर्जुन ने अकेले ही भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और कर्ण जैसे महारथियों को एक साथ पराजित कर दिया जबकि महाभारत के युद्ध में तो इन महारथियों से अकेले ही लड़ने में अर्जुन को बहुत कठिनाई हुई, जबकि उस समय भगवान् कृष्ण सारथि बनकर उनके साथ थे । भीष्म को मारने के लिए तो शिखण्डी (जो पूर्व जन्म में स्त्री था) के पीछे खड़े होकर अर्जुन को बाण चलाने पड़े थे, जबकि उस समय तो भीष्म युद्ध से हट भी चुके थे ।

गाय की सेवा और रक्षा करने पर राष्ट्र की सुरक्षा होती है, देश हर तरह से समृद्धिशाली होता है और गाय की हत्या करने और उसका माँस खाने वाले देशों और उसके नागरिकों का भौतिक रूप से सम्पन्न और शक्तिशाली होने पर भी विनाश ही होता है जैसे कि दो विश्व युद्धों में यूरोप के विकसित और शक्तिशाली देश बुरी तरह पराजित हुए थे, इनके धन-जन की अपार क्षति हुई । जापान पर सन् १९४५ में परमाणु बम गिराया गया और वहाँ लाखों लोगों की अत्यन्त भयंकर रूप से मृत्यु हुई । इस भयानक त्रासदी का कारण भौतिक इतिहासकार कुछ भी बताते रहें परन्तु आध्यात्मिक

दृष्टिकोण से देखने पर यही पता चलता है कि गौमाँस का भक्षण करने के कारण ही द्वितीय विश्व युद्ध में सम्मिलित देशों को भयानक त्रासदी का सामना करना पड़ा । आज भी गोमाँस का भक्षण करते रहने के कारण यूरोप के विकसित देशों में मुस्लिम शरणार्थियों ने प्रवेश करके यूरोप की सरकारों और वहाँ की जनता के समक्ष बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न कर दी है । दुनिया में आज तृतीय विश्व युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं । रूस और यूक्रेन के मध्य कई वर्षों से युद्ध चल ही रहा है और अब तो उससे भी भयावह युद्ध अमेरिका और ईरान के मध्य हो रहा है । इसके समाप्त होने के कोई संकेत नहीं मिल रहे हैं । ईरान अमेरिका के विरुद्ध बड़ी बहादुरी के साथ लड़ रहा है और अमेरिका इस युद्ध में विश्व से अलग-थलग पड़ चुका है, उसके सहयोगी यूरोप के नाटो संगठन से जुड़े देश ही अमेरिका का बिलकुल भी सहयोग नहीं कर रहे हैं । ईरान के साथ युद्ध में अमेरिका की सुपर पॉवर की छवि को बहुत बड़ा आघात लगा है और अब वह पहले जैसा शक्तिशाली नहीं रह गया है । इस युद्ध में अमेरिका को वित्त और रक्षा के क्षेत्र में बहुत अधिक क्षति हो रही है । इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि अमेरिका में बहुत लम्बे समय से गो वध होता रहा है और यह देश गो माँस खाने में भी बड़ा प्रगतिशील है । अब इस कुकृत्य का दण्ड इस देश को भोगना पड़ रहा है, इस देश की आर्थिक प्रगति और यहाँ की जनता के नैतिक मूल्यों का तेजी से पतन हो रहा है, अमेरिका निवासी बड़ी संख्या में मानसिक अवसाद (depression) की चपेट में आ रहे हैं और वहाँ जीवन से निराश आत्महत्या करने वाले लोगों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हो रही है, भविष्य में भी इस देश का बहुत अधिक पतन होगा । इसी प्रकार इस युद्ध में खाड़ी देशों के अमेरिका के आश्रित अरब देशों को बुरी तरह से आर्थिक संकट झेलना पड़ा रहा है । मध्य एशिया के इस इलाके में ही दुनिया की आधुनिक भौतिक सभ्यता की रीढ़ की हड्डी के रूप में अपार डीजल-पेट्रोल और गैस के भण्डार मौजूद हैं । ईरान लगभग प्रतिदिन ही इन भण्डारों पर अपनी मिसाइलों से हमला करके इनको नष्ट कर रहा है । इससे अत्यन्त धनवान अरब देशों की आर्थिक समृद्धि का आधार नष्ट होने की ओर अग्रसर है । ये देश प्रतिदिन ईरान के हाथों पिट रहे हैं और अमेरिका इनकी सहायता नहीं कर पा रहा है । इस समस्या का भी मूल कारण व्यापक रूप से गो माँस भक्षण करना ही है क्योंकि खाड़ी के धनी अरब देश भारत से बहुत बड़ी मात्रा में गो माँस का आयात करते हैं । इन खलों की जिह्वा की तृप्ति के लिए भारत द्वारा धन के लोभ में भारी संख्या में गो वंश का क्रूरतापूर्वक वध किया जाता है । आज इसी गो माँस भक्षण करने का दण्ड इन दुष्ट देशों को भोगना पड़ रहा है और ईरान जिस तरह से अरब देशों के पेट्रोल और गैस के भण्डारों पर आक्रमण कर रहा है, उसके कारण आज सारी दुनिया के समक्ष पेट्रोल-डीजल और गैस की कमी का भयावह संकट उपस्थित हो गया है और एक दिन इस दुनिया से पेट्रोल-डीजल और गैस का सफाया भी हो सकता है, यहाँ तक कि इस युद्ध के कारण इन्टरनेट की सुविधा से भी दुनिया को वंचित होना पड़ सकता है ।

भारत के महापुरुषों ने, यहाँ के शास्त्रों ने बहुत पहले ही घोषणा कर दी है कि कलियुग में एक समय महाविनाश होगा । इस बात की घोषणा सूरदासजी ने अपने पद में की है । इसी प्रकार भविष्य पुराण और भविष्य मालिका आदि ग्रंथों में भी महाविनाश की घोषणा बहुत पहले ही कर दी गयी है । महापुरुषों द्वारा रचित ग्रन्थ 'भविष्य मालिका' के अनुसार तो सन् २०२६ से दुनिया में युद्धों के माध्यम से विनाश का प्रारम्भ हो जाएगा और सन् २०३२ या २०३५ तक यह महाविनाश चलता रहेगा । बड़े-बड़े युद्ध होंगे और उसमें बहुत बड़ी संख्या में मनुष्यों की मृत्यु होगी । आज दुनिया की जनसंख्या ८ या ९ अरब के लगभग है, 'भविष्य मालिका' के अनुसार महाविनाश के बाद दुनिया की आबादी लगभग ३५ करोड़ तक सीमित रह जायेगी । यह जो सर्वनाश होगा, उसका मूल कारण अनेक पापों में सबसे बड़ा और प्रमुख महापाप है गो हत्या और गो माँस भक्षण । गो हत्या, गो माँस भक्षण से बड़ा कोई पाप नहीं है । इस महापाप के कारण ही दुनिया में सर्वनाश होगा और इसका प्रारम्भ हो चुका है । वर्तमान काल में जो ईरान और अमेरिका-इसराइल के विरुद्ध संघर्ष चल रहा है, यह धीरे-धीरे बहुत भयावह रूप धारण कर लेगा और इसके कारण गो माँस खाने वाले और गो हत्या करने वाले नर पिशाचों का पूर्णतया विनाश हो जायेगा । केवल गोसेवा और गोरक्षा करने वाले,

भगवान् श्रीहरि, श्रीसीता-राम, श्रीराधा-माधव के उपासक, कलिकाल के सर्वश्रेष्ठ साधन नाम कीर्तन का और महापुरुषों के सत्संग का आश्रय करने वाले जन ही इस महाविनाश से बचे रहेंगे ।

ऐसी स्थिति में प्रत्येक भारतवासी, विशेषकर सनातन धर्मावलम्बियों का यह सबसे अनिवार्य कर्तव्य बनता है कि महाविनाश के पहले ही वे मोह की निद्रा से जाग जायें और केवल अर्थोपार्जन एवं अपने कुटुम्ब के पालन-पोषण तक ही अपने को सीमित न रखें । इस समय हम सबके लिए सर्वप्रधान कर्त्तव्य यही बनता है कि हम भारत में भयानक रूप से हो रहे गो वध के प्रति जागरूक होकर इसके पूर्णतया प्रतिबन्ध के लिए एक साथ मिलकर प्रयास करें । वैदिक ग्रंथों में कहा गया है – कलौ सङ्घे शक्तिः । कलियुग में संगठन में शक्ति है । इसलिए हम लोगों को परस्पर के द्वेष-मनमुटाव और विभिन्न प्रकार के मतभेदों व स्वार्थों को भुलाकर एकता की भावना के साथ गो हत्या जैसे भीषण कुकृत्य पर पूर्ण विराम लगाने के लिए कमर कसकर अपने सम्पूर्ण प्रयासों को झोंक देना चाहिए । इस समय यदि प्रमाद और निजी स्वार्थों के वशीभूत होकर गो हत्या को बंद करवाने के इस महाभियान में हमने सहयोग नहीं किया तो महापुरुषों और शास्त्रों द्वारा शीघ्र ही होने वाले सर्वविनाश की जो घोषणा कर दी गयी है, उस सर्वनाश से हम चतुराईपूर्वक लाख प्रयत्नों के बावजूद भी बच नहीं पायेंगे ।

सबसे पहले तो हमें अपने मन से इस मानसिकता को निकाल देना चाहिए कि गाय पशु है । शास्त्रों के अनुसार तो गाय सम्पूर्ण जगत की जननी है । भगवान् राम-कृष्ण-शिव एवं समस्त देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों की भी उपास्या, उनकी आराध्या है अर्थात् समस्त देवी-देवगण, ऋषि-मुनिगण और स्वयं भगवान् राम-कृष्ण भी गो माता की पूजा करते हैं, उसकी उपासना करते, उसकी हर तरह से सेवा और संरक्षण करते हैं । ब्रजभूमि में तो स्वयं भगवान् कृष्ण ने प्रकट होकर बचपन से ही गो वंश की सेवा प्रारम्भ करके सारे संसार को गोसेवा की शिक्षा दी । गोपालजी गोसेवा इस प्रकार करते थे कि नंगे पाँव ही गोचारण करने के लिए जाते थे । यशोदा मैया उनको समझातीं कि 'लाला ! तू छोटा सा है, तेरे पाँव कितने कोमल हैं । तू अपने कोमल चरणों में चरण पादुका पहनकर गो चारण के लिया जाया कर, नहीं तो जंगल में काँटे, कंकड़-पत्थर तेरे पांवों में चुभ जायेंगे ।' कन्हैया माँ की बात सुनकर कहते – 'मैया ! हम लोग गो माता के सेवक हैं । गायें हमारी इष्ट हैं । मेरी इष्ट गायें वन में बिना पादुका के विचरण करें और मैं उनका सेवक होकर चरण पादुका पहनूँ, ऐसा नहीं हो सकता । जिस तरह गायें रहती हैं, उसी प्रकार गो सेवक को भी अपनी आवश्यकतायें सीमित करके गाय की सेवा के अनुकूल अपना आचरण करना चाहिए ।' इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपाल बनकर सारे जगत को अपने आचरण के द्वारा क्रियात्मक ढंग से शिक्षा दी कि किस निष्ठा के साथ मनुष्य को गाय की सेवा करना चाहिए ।

आज उन्हीं गोपाल की ब्रजभूमि से निकटस्थ मेवात के कत्लखानों में कितनी ही गायों को ट्रकों में भरकर प्रतिदिन कटने के लिए भेजा रहा है । हम लोग यह सब अत्याचार मूक होकर देख रहे हैं, धन के लोभ से इस महापाप में सहयोग कर रहे हैं, यह हमारे लिए अत्यधिक शर्मनाक है । अभी भी समय है, सभी लोग सावधान हो जाएँ, नहीं तो गाय के वध में सहयोग करने वाले हम जैसे धन के लोभी गोपाल के सुदर्शन चक्र के वार से नहीं बच सकेंगे । गोविन्द को गायें सबसे अधिक प्रिय हैं, जब वे कुपित होकर इस महापाप का दण्ड देना प्रारम्भ करेंगे तो धन-दौलत अथवा दुनिया की कोई शक्ति बचा नहीं सकती । इसलिए सब लोग पूर्ण सावधान होकर गोरक्षा के परम पुनीत कार्य में अविलम्ब सहयोग करें । २७ अप्रैल से अनिश्चित तिथि तक गो सम्मान दिवस पूरे राष्ट्र में मनाया जा रहा है । इसमें सभी भारतीय, विशेषकर सनातन धर्मी गोरक्षा के लिए तैयार किये गये इस कार्यक्रम में तन-मन-धन से जुट जाएँ । सभी से अपेक्षा है कि प्रधान मन्त्री, मुख्य मन्त्री को तहसील कार्यालय के माध्यम से गो सम्मान-गोरक्षा हेतु पत्र भिजवायें ।

भक्तियोग 'निष्काम कर्म'

बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग (१८/१/२००९) से संकलित

श्रीगीताजी में भगवान् ने कहा है – फलासक्ति मत करो अर्थात् कर्म तो करो पर उस कर्म के फल में आसक्ति मत रखो । **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।'** (श्रीगीताजी २/४७)

पतंजलि योगशास्त्र के दूसरे अध्याय साधनपाद का १३ वां सूत्र कहता है – **'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः'** (योगसाधनपाद - २/१३) 'सति मूले' - जब तक मूल अविद्या है ; तद् विपाको – उसका फल ; जात्यायुर्भोगः- जाति, आयु और भोग के रूप में मिलता है । 'जब तक स्थूल शरीर की मृत्यु के समय में जीव के चित्त में अविद्या की जड़ (मूल) रहती है, तब तक पिछले जन्म में किए गये कर्मों का फल उसको अगले जन्म में जाति, आयु तथा भोग के रूप में मिलता रहता है ।' जैसे 'बरसन' एक प्रकार का चारा होता है, उसको ऊपर से काट देने पर वह फिर से बढ़ जाता है क्योंकि उसकी जड़ रहती है, वैसे ही जब तक जीव के चित्त में मूल अविद्या है यानि अविद्या की जड़ है ; तब तक उसका विपाक अर्थात् फल मिलता रहेगा – 'सति मूले तद्विपाको'; और फल क्या है – जात्यायुर्भोगः – जाति, आयु, भोग यानि पूर्व कर्मों का फल उसको आगे जाति, आयु और भोग के रूप में मिलता रहेगा । तो फल का अर्थ हुआ – हमें अगले जन्म में मिलने वाली जाति, आयु और भोग का निर्धारण; अत: फल से बचने के लिए हमें हर कर्म भगवान् को समर्पित करके निष्काम भाव से ही करना चाहिए ताकि हम इस जन्म-मरण के क्रम को काट सकें ।

जाति का अर्थ यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, ठाकुर आदि नहीं है । जाति का अर्थ यहाँ चौरासी लाख योनियाँ है या चौरासी लाख प्रकार के शरीर भी कह सकते हैं तो जाति का अर्थ है कि इन चौरासी लाख योनियों में तुमको कहाँ जन्म मिलेगा ? ये जो ८४ लाख योनियाँ है, जिनमें जीव भ्रमण करता है, इसका पूरा विवरण पद्मपुराण में दिया गया है – ३० लाख योनियाँ – पशु ; २० लाख योनियाँ – स्थावर यानि पेड़, पौधे, पर्वत आदि ; १० लाख योनियाँ – नभचर यानि पक्षी ; ११ लाख योनियाँ – कीट ; ९ लाख योनियाँ – जलचर ; ४ लाख योनियाँ – नर , असुर , यक्ष, देव आदि तो पहला फल हुआ जाति – कि आगे तुमको कुत्ता बनना है या गधा बनना है, कीड़ा बनना है, मछली बनना है आदि; दूसरा फल है आयु - तुमको कितनी देर तक वहाँ गधा बनना है यानि कि उस योनि में तुम्हारी उम्र कितनी है ? तीसरा फल है भोग – यानि भोग-सामग्री; इसमें बहुत-सी चीजें आती हैं – जैसे देश, काल, वस्तु, परिस्थिति आदि । इस भोग सामग्री को कुछ उदाहरणों से समझते हैं – भोग का पहला उदाहरण – जैसे किस्मत तुमको कहीं ले गयी, जैसे तुम्हारी मृत्यु कहीं दूसरी जगह पर निर्धारित है तो तुम्हारा कर्म तुमको उस देश में ले गया । मान लो तुम कहीं ट्रेन में बैठकर जा रहे हो, रास्ते में तुम्हारी ट्रेन दुर्घटना ग्रस्त हो गयी तो कर्मफल तुमको उस देश में ले गया और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त हो गयी । इस परिस्थिति में अलग-अलग भोग हैं । ये तुम्हारे भोग के अनुसार ही ऐसी परिस्थिति बनी । अब उस ट्रेन में बहुत से लोग बैठे थे पर उन सबके भोग अलग-अलग थे तो कोई तो दुर्घटना में मर गया, किसी की टांग ही टूटी और किसी को खरोंच ही आई । भोग का दूसरा उदाहरण – बाबाश्री के पूर्व आश्रम में उनके एक चाचा जी थे, उन्होंने अल्सेशियन कुत्ते पाले हुए थे और उन कुत्तों की देख-रेख के लिए दो नौकर भी रखे हुए थे । वे नौकर हर रोज उन कुत्तों को घुमाने ले जाते थे, बाहर मल त्याग कराने के लिए ले जाते थे और फिर आकर उन्हें गद्दे वाले बिस्तर पर सुलाते थे । जब कभी चाचाजी गाड़ी में कहीं जाते थे तो वे कुत्ते भी चाचाजी के साथ गाड़ी में जाते थे । यहाँ कहने का अर्थ ये है कि थे तो वे कुत्ते यानि उनकी जाति तो बड़ी निकृष्ट थी लेकिन भोग उत्तम था । ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि ये जो जाति,आयु और भोग हैं, ये त्रिगुणात्मक (सात्विक ,राजस और तामस) होते हैं । आइए, अब बाबाश्री से इन त्रिगुणात्मक जाति, आयु, भोग को समझते हैं । जाति में देवता सात्विक, मनुष्य राजस और यक्ष, राक्षस आदि तामस होते हैं । श्रीमद्भागवत के अनुसार जो देश है, उसमें वन में रहना सात्विक, ग्राम में रहना राजस और सिनेमाघर, जुआघर व मदिरालय आदि स्थानों में रहना तामस होता है । जहाँ भगवान् का निवास है, भगवत्कथा और भगवद् गुणगान होता

है, वह निर्गुण है । निर्गुण वस्तुओं के सेवन से ही मनुष्य त्रिगुण से ऊपर उठता है । (श्रीमानमन्दिर के निवासी भक्तजन बरसाना, गह्वरवन में रहते हैं । भगवत्कृपा से यह सात्विक वास से भी श्रेष्ठ गुणातीत देश रहने को मिला है, गुणातीत संग भी मिला है, यहाँ हर चीज गुणातीत मिल गयी है । श्रीप्रभु कृपा से सबसे बड़ी उपलब्धि मिल गई है ।)

वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते । तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ (श्रीभागवतजी ११/२५/२५) नीचे के श्लोक में उन दस वस्तुओं के नाम लिखे हैं, जो अगले जन्म में मिलने वाली भोग सामग्री के अन्तर्गत ही आती हैं और त्रिगुणात्मक होती हैं – **आगमोऽप: प्रजा देश: काल: कर्म च जन्म च । ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतव: ॥** (श्रीभागवतजी ११/१३/४) ये दस चीजें यदि सात्विक हों तो उसे सात्विक भोग रूपी फल माना जाता है, इसी प्रकार ये दस चीजें राजस या तामस भी मिल सकती हैं, ये कर्मानुसार मिलती हैं । जैसे - सात्विक गुण से समझते हैं –

१. आगम – सात्विक शास्त्रों को, निर्गुण शास्त्र गीता, भागवत, रामायण आदि सुनने या पढ़ने का अवसर मिलना । २. 'अपः' - सात्विक अन्न-जल का मिलना ३. 'प्रजा' – सात्विक भक्तों, संतों, व्यक्ति आदि का सम्पर्क ४. देश – सात्विक देश जैसे धाम (ब्रजभूमि) का वास मिलना । ('श्रीगह्वरवन' परम श्रेष्ठ लीलास्थली है ।) ५. 'काल' – समय का उपयोग निरन्तर भजन में स्वाभाविक होना । ६. कर्म – भक्त-संत-भगवत सेवा, भजन आदि के कर्म सहजता से होना । राग-द्वेष के कर्म नहीं करना चाहिए । ७. जन्म – जन्म दो प्रकार का होता है । एक तो माता-पिता के संयोग से जन्म होता है । जिस परिवार में जन्म मिला है, वैसा ही स्वभाव बनता है जैसे पिताजी हुक्का पियेंगे तो बेटा भी हुक्का पिएगा । ऐसा अक्सर होता है । दूसरे प्रकार का जन्म होता है वैष्णव जन्म, जो सत्संग, दीक्षा आदि के बाद होता है । इसको भी जन्म माना गया है । माता-पिता द्वारा जन्म से बड़ा है भक्ति क्षेत्र में आना, यह पुनर्जन्म होता है । दीक्षा का मतलब केवल कान में मन्त्र देना ही नहीं होता है । दीक्षा को अच्छी प्रकार समझना चाहिए, नहीं तो प्रायः लोग दीक्षा को लेकर भ्रमित रहते हैं कि हमने किसी गुरु के द्वारा मन्त्र नहीं लिया, हमारा तो पतन हो गया । दीक्षा का अर्थ है – 'दिव्यं भावं यतो दद्यात् क्षिणोति दुरितानि च ।' – दिव्य भावों को ग्रहण करना दीक्षा है । दिव्य भाव आने से पाप जल जाते हैं । किसी गुरु से मन्त्र ले आये किन्तु मन में दिव्य भाव नहीं उत्पन्न हुए तो उस गुरु मन्त्र से कोई लाभ नहीं होगा । 'अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वारम्भ विशारदैः ॥' इसी को दीक्षा कहा गया है । सभी चतुर शास्त्रकार इसी को दीक्षा मानते हैं । दीक्षा आदि होने या शुद्ध सत्संग मिलने से नया जन्म होना या पवित्र कुल आदि में जन्म होना ८. ध्यान - सात्विक चिंतन मे रुचि होना ९. मंत्र – वाणी से सात्विक चर्चा या मन्त्रों का उच्चारण होना १०. संस्कार – सात्विक संस्कार जैसे प्रभु में स्वाभाविक श्रद्धा, विश्वास आदि होना । इस तरह भोग सामग्री में बहुत सी चीजें आती हैं जैसे देश, काल, वस्तु, जन्म, परिस्थिति आदि-आदि और ये सारी भी त्रिगुणात्मक होती हैं । अतः ये तीन प्रकार का त्रिगुणात्मक फल हुआ – जाति , आयु और भोग । पूर्व जन्मों के कर्मानुसार हमें इस जन्म में त्रिगुणात्मक जाति, आयु और भोग के रूप में जो भी फल मिला है, उसी के अनुसार ही हमें इस जीवन में सुख और दुःख का अनुभव होता है और इस सुख–दुःख को भोगना ही फल भोगना है । फल को भोगो मत, ऐसा करने से गुणातीत हो जाओगे अर्थात् सुख-दुःख की अनुभूति मत करो, दोनों में मन समान रखो - 'सुख में फूलो मती, दुःख मे रोओ मती ।' भगवान् श्रीगीता जी में यही कह रहे हैं गुणातीत होने के लिए – 'समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः' (श्रीगीताजी १४/२४) जो सुख-दुःख हमारे हृदय में आता है, वह भोग है और जो परिस्थिति आती है, वह फल है । जैसे उदाहरण के लिए किसी की माँ की मृत्यु हो गई, तो किसी का हमसे मिलना – बिछुड़ना तो परिस्थिति हुई लेकिन यदि उसमें हम दुखी हो गये तो ये दुखी होना उस फल रूप में आई हुई परिस्थिति का भोगना है । जैसे भगवान् कह रहे हैं – **'कर्मणा जायते जन्तु: कर्मणैव विलीयते ।** (श्रीभागवतजी १०/२४/१३) 'कर्मणा जायते जन्तु:' कर्म के अनुसार ही जीव जन्म लेता है । यहाँ 'जायते' का अर्थ है योनि, अतः योनि में जन्म होना फल है; 'कर्मणैव विलीयते' - कर्म से ही मृत्यु आई, ये भी फल है । 'देहानुच्चावचाञ्जन्तु: प्राप्योत्सृजति कर्मणा । शत्रुर्मित्रमुदासीन: कर्मैव गुरुरीश्वर: ॥' (श्रीभागवतजी १०/२४/१७) 'देहानुच्चावचाञ्जन्तु:' – जैसे ऊँचा-नीचा, मोटा-

पतला स्थूल देह मिला – ये फल है ; प्राप्योत्सृजति कर्मणा – इस स्थूल देह को कर्म के अनुसार समय आने पर त्यागना पड़ेगा – ये फल है ; शत्रुर्मित्रमुदासीनः - कोई शत्रु, मित्र, उदासीन बन कर आ गया – ये फल है ; कर्मैव गुरुरीश्वरः- कर्म ही गुरु और ईश्वर बनता है – यह फल है । तो ये सब फल के उदाहरण हैं और इस फल का भोग क्या है – सुख-दुःख, इसको मत भोगो । जैसे गीताजी में देखो कि फल तो आया पर उस फल को भोगो मत – **'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥** (श्रीगीताजी – २/५६) जो मनुष्य किसी प्रकार के दुखों में क्षुब्ध नहीं होता, जो सुख की लालसा नहीं करता और जो आसक्ति, भय और क्रोध से मुक्त रहता है, वह स्थिर बुद्धि वाला मनीषी कहलाता है । कुछ बुरा हुआ और दुःखी हो गये तो ये फल का भोग है । कुछ अनुकूल सुख मिल गया और खुश हो गये तो ये फल का भोग है । यदि बुद्धि सुख-दुःख में समान रहेगी तो सब पाप जल जायेंगे । देखो श्रीगीताजी में –

'बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते । तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।'(श्रीगीताजी २/५१)

जब कोई मनुष्य बिना आसक्ति के कर्मयोग का अभ्यास करता है तब वह इसी जीवन में ही शुभ और अशुभ प्रतिक्रियाओं से छुटकारा पा लेता है । इसलिए योग के लिए प्रयास करना चाहिए, जो कुशलतापूर्वक कर्म करने की कला है ।

'कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः । जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥' (श्रीगीताजी २/५१)

समबुद्धि युक्त ऋषि-मुनि कर्म के फलों की आसक्ति से स्वयं को मुक्त कर लेते हैं, जो मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र में बाँध लेती हैं । इस चेतना में कर्म करते हुए वे उस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं जो सभी दुखों से परे है ।

हम लोग सुख-दुःख का भोग करते हैं, वह नहीं होना चाहिए । अब जैसे किसी ने हमें बुरा कह दिया तो यदि हम बुरा मान गये तो वह अपमान का भोग है और यदि इसमें भी हम प्रसन्न रहे तो माया से पार हो जायेंगे । सुख – दुःख का भोग, मान-अपमान का भोग आदि ये बड़ी सूक्ष्म बातें हैं - देखो गीताजी में - **'यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्। नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥'** (श्रीगीताजी – २/५७) जो सभी परिस्थितियों में अनासक्त रहता है और न ही शुभ फल की प्राप्ति से हर्षित होता है और न ही विपत्ति से उदासीन होता है, वही पूर्ण ज्ञानावस्था में स्थित मुनि है । सार बात ये है कि हमारे जीवन की हर परिस्थिति हमारे अपने ही पूर्व कर्मों का फल है तथा कोई अन्य इसके लिए जिम्मेदार नहीं है । अब विधि अनुसार तो हम इस कर्मफल को भोगने के लिए विवश हैं लेकिन बुद्धिमान व्यक्ति हर स्थिति में अपने मन को समान रखते हुए अपने पूर्व कर्मों के फल को भोगने से बच जाते हैं और वर्तमान के सभी कर्म वे प्रभु को समर्पित करते हुए करते हैं, जिससे वे सदा के लिए कर्मबन्धन से मुक्त हो जाते हैं । कर्म फल का अर्थ है - अगले जन्म में मिलने वाली जाति,आयु और भोग; ये तीनों फल (जाति,आयु और भोग) तीन गुणों (सात्विक, राजस और तामस) से युक्त होते हैं । कर्मफल का अर्थ सुख-दुःख नहीं है वरन् उस प्राप्त कर्मफल को भोगना ही सुख-दुःख है । कर्मफल भोगने से बचने के लिए एकमात्र उपाय – 'अनासक्त होकर सुख-दुःख में मन को समान रखना ।'

विकर्म से भव-बन्धन

बाबाश्री के सत्संग '४/२/२००३' से संकलित

आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥ फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥ कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥ (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ४४)

"आकर चारि लच्छ चौरासी" में आकर चारि का अर्थ है - चार आकर यानि कि जीव चार प्रकार से उत्पन्न होते हैं – उद्भिज्ज, स्वेदज, अंडज, जरायुज और लच्छ चौरासी का अर्थ है - चौरासी लाख योनियाँ । इसमें २० लाख तो जड़ योनियाँ हैं - पेड़,पहाड़ ,नदी आदि ; १० लाख कीट योनियाँ हैं; ३० लाख पशु योनियाँ हैं; ११ लाख पक्षी योनियाँ हैं; ९ लाख जलचर योनियाँ हैं और ४ लाख मानव योनियाँ हैं । इन ८४ लाख योनियों में घूमता है हर प्राणी, हम सब लोग इन

योनियों में घूमकर आये हैं किन्तु अब याद नहीं है, इसीलिए माया में घूम रहे हैं । इन चारों आकर में हम सब घूमकर आये हैं जैसे उद्भिज्ज अर्थात् पेड.,पहाड़, नदी आदि भी बने हैं ; स्वेदज के अन्तर्गत मक्खी, मच्छर आदि यानि पसीने से पैदा होने वाले जीव या ऊष्मज भी बने हैं ; उससे आगे अंडज होते हैं जो अंडे में से निकलते हैं जैसे चिड़िया आदि ; उससे आगे जरायुज होते हैं जैसे झिल्ली में से मनुष्य पैदा होता है । इस प्रकार ये चार प्रकार के आकर हैं अर्थात् जीवों के पैदा होने की शैलियां और इनमें ८४ लाख योनियाँ हैं - जिसमें जीव घूमता रहता है । इसके ऊपर चार बंधन हैं – काल, कर्म, स्वभाव, गुण । 'जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥ फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥' ये समझने की बात है, 'घेरा' यानि बन्धन - एक तो काल का बन्धन है हर मनुष्य के ऊपर, इसके बाद कर्म का बन्धन, स्वभाव का बन्धन और गुण का बन्धन । ये बन्धन भजन नहीं करने देते, कोई चलता भी है तो ये धक्का मारकर गिरा देते हैं, चल नहीं सकता प्राणी । ये चारों बन्धन मिलकर सब चौपट कर देते हैं चाण्डाल चौकड़ी की तरह जैसे महाभारत में शकुनि मामा, दुर्योधन, दुशासन और कर्ण - ये चाण्डाल चौकड़ी थे और शकुनि मामा सबके नेता थे, इसीलिए महाभारत का भीषण संग्राम हुआ, उसी प्रकार ये चार घेरे हैं जो किसी को भजन नहीं करने देते । इन चारों घेरों को तोड़े, तब जीव भगवान् की ओर चल सकता है, नहीं तो सर्वनाश हो जाता है । काल का बन्धन क्या है ? ये सब समझने की बातें हैं तभी मनुष्य जागता है; नहीं तो कभी नहीं जाग पाता । ये जो ८४ लाख योनियाँ हैं जैसे हमने आपको ऊपर बताया, इन सब योनियों में जन्म लेने की शैली चार ही हैं - उद्भिज्ज, स्वेदज, अंडज, जरायुज और इन चारों में बन्धन है । जहाँ भी आप जायेंगे, वहीं बन्धन है, बेड़ियाँ हैं , ये भजन नहीं करने देती । इस प्रकार काल का घेरा, कर्म का घेरा, स्वभाव का घेरा और गुण का घेरा - ये चार घेरे हैं, इनको तोड़ने के बाद आप भजन कर पायेंगे । 'फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥' 'घेरा' माने घेर रखा है इन चारों ने ! जैसे भँवर घेर लेती है, वैसे ही काल का घेरा, कर्म का घेरा, स्वभाव का घेरा और गुण का घेरा है । इन घेराओं को तोडने के बाद ही हम आगे बढ़ सकते हैं, जैसे आपने हमको चारों तरफ से घिराव दे दिया तो हम आगे कैसे बढ़ सकते हैं, उसी प्रकार ये चार दीवारी यानि चार घेरे हैं, जिनको तोड़ने के बाद हम आगे बढ़ सकते हैं या जाग सकते हैं । अब ये चार घेरे क्या हैं – ये भी समझ लीजिए क्योंकि हमारे ऊपर ये जो चार घेरे हैं, इनको जब हम जानेंगे तभी तो इनको तोड़ने की कोशिश कर सकते हैं । भई, पहले रोग मालूम होगा तभी तो रोग का इलाज करेंगे जैसे टी.बी. है या कैंसर है – जाँच से इन रोगों के लक्षण मालूम होंगे तभी तो इनका इलाज किया जा सकता है । इसलिए हमें रोग का भी ज्ञान होना चाहिए , अतः बन्धन के ये चार घेरे हैं – पहला घेरा है काल । काल का घेरा क्या है, इसे विस्तार से समझिये । सृष्टि में दो क्रम हैं – एक ह्रासवादी, एक विकासवादी । विकासवादी क्रम के अन्तर्गत आधुनिक भौतिक विज्ञान मानता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में पृथ्वी आग का गोला थी, यह लाखों-करोड़ों वर्षों में ठंडी हुई, फिर उसमें जीवाणु उत्पन्न हुआ, अमीबा पैदा हुआ, फिर धीरे-धीरे वनस्पति पैदा हुई , वनस्पति उत्पन्न होने के कई वर्षों बाद फिर अन्य प्राणी उत्पन्न हुए और सबसे अन्त में मनुष्य पैदा हुआ । इस क्रम को विकासवादी क्रम कहते हैं । हमारे शास्त्रों में इनका भी वर्णन किया गया है । ऐसा नहीं है कि ये सब शास्त्र में वर्णित नहीं हैं, ये सब एकदम मिथ्या नहीं हैं, भौतिक विज्ञान भी सही है । सृष्टि की उत्पत्ति का दूसरा क्रम है ह्रासवादी क्रम, जिसके अनुसार सर्वप्रथम भगवान् से स्त्री-पुरुष का जोड़ा के रूप में मनु-शतरूपा उत्पन्न हुए, जो देवतुल्य थे और उनके द्वारा आगे अन्य सन्तान उत्पन्न होती गयीं, जिनका क्रमशः ह्रास होता गया जैसे सतयुग में धर्म के चार चरण थे, त्रेता में धर्म का एक चरण टूट गया और तीन चरण ही रह गये, द्वापर में दो चरण और कलियुग में धर्म का एक ही चरण रह गया । कलियुग के अन्त में यह चरण भी टूट जायेगा, इस प्रकार यह ह्रासवादी क्रम है । सृष्टि के ये दोनों क्रम सही हैं, इसमें बहुत से लोग झगड़ा करते हैं । जो नासमझ लोग हैं, वही सृष्टि के क्रम को लेकर लड़ते हैं और जो समन्वय करने वाले हैं, वे समझते हैं । जैसे हमारे सनातन धर्म के शास्त्रों के अनुसार जब मनु उत्पन्न हुए तो उन्होंने भगवान् से पूछा कि सृष्टि कहाँ करें क्योंकि पृथ्वी तो है ही नहीं, उसे तो दैत्य हिरण्याक्ष रसातल में ले गया, ऐसी स्थिति में अब सृष्टि होगी तो रुकेगी कहाँ ? तब भगवान्

वराह रूप धारणकर समुद्र के भीतर गए और पृथ्वी को वहाँ से लेकर लाये तो ये क्रमश: जो विकास हुआ, यह दिखाता है कि पहले पृथ्वी नहीं थी, फिर लाई गई, उसकी स्थापना की गई और फिर धीरे-धीरे उसका विकास हुआ तो ये विकासवादी क्रम है कि पहले मनु इत्यादि उत्पन्न हुए, उसके बाद पृथ्वी आई । इसी तरह से ह्रासवादी क्रम भी है । हमारे शास्त्रों में इन दोनों के प्रमाण मिलते हैं । यह भी प्रमाण मिलता है कि पहले जीव जाता है निम्न योनियों में अर्थात् उद्भिज्ज योनियों में जाता है फिर प्रगति करता है तब स्वेदज बनता है, उसके आगे फिर प्रगति करता है तो अंडज बनता है, उसके बाद और प्रगति करता है तो जरायुज बनता है । ये भी विकास हमारे शास्त्रों में लिखा है । अरबों वर्ष लग जाते हैं इस विकास में, जीवाणु बनने में, धीरे-धीरे यानि प्रलय के बाद कैसे सृष्टि बनी ? पहले अव्यक्त से व्यक्त, उससे महत्तत्त्व, उससे अहंकार तथा उससे त्रिविध अहंकार हुआ, ये सब विकासवादी दृष्टिकोण है । त्रिविध अहंकार में सात्विक, राजस और तामस हुए । अव्यक्त से व्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार; त्रिविध अहंकार (सात्विक, राजस, तामस) सात्विक अहंकार से इन्द्रियों के देवगण, राजस अहंकार से इंद्रियाँ और तामस अहंकार से तन्मात्राऐं बनीं, उसके बाद पंचमहाभूत – आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि बने । पहले पृथ्वी नहीं थी, पंचमहाभूत में भी सबसे पहले आकाश की उत्पत्ति हुई, फिर वायु यानि गैसें बनीं, गैसों से फिर अग्नि की उत्पत्ति हुई । अग्नि बहुत दिनों में ठंडी हुई और फिर उससे जल की उत्पत्ति हुई । जल भी एकत्रित हुआ तो उससे पृथ्वी बनी । ये सब विज्ञान की बातें हैं और ये सब शास्त्रों में लिखा है । सृष्टि बनने का क्रम ही यही है, इसीलिए विज्ञान में और अध्यात्म में अन्तर नहीं है । इस बात को हम समझ नहीं पाते, इसीलिए हमारे मन में संशय आता है कि शास्त्रों में ये सब गलत बातें लिखी गई हैं, अन्यथा हमारे शास्त्रों में पूर्णतया सत्य बात कही गयी है कि सृष्टि कैसे बनी, पृथ्वी की उत्पत्ति कैसे हुई ? बाबाश्री ने इस विकासवादी क्रम पर एक घटना सुनाते हुये बताया कि एक बार उनके पास दिल्ली विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर आये थे तो उन्होंने एक प्रश्न किया – प्रो. साहब का प्रश्न - आपके शास्त्रों में जो सतयुग, त्रेता आदि युगों का वर्णन किया गया है, क्या ये सही है ? (श्रीबाबामहाराज उन्हें आधुनिक विज्ञान के अनुसार सरल भावों में समझाने के लिए बोले) बाबाश्री - प्रो. साहब, आपके भौतिक विज्ञान में पृथ्वी की उम्र कितनी मानी गई है ?

प्रोफ़ेसर – लगभग दो अरब वर्ष के आसपास ।

बाबाश्री – कैसे आपने पता लगा लिया ?

प्रोफ़ेसर - ऐसा है कि ये जो रेडियोधर्मिता (रेडियो तरंगें) होती हैं, इनका पृथ्वी पर या चट्टानों पर क्या असर पड़ता है, हम लोग उससे अनुमान लगा लेते हैं ।

बाबाश्री – यही तो हमारे शास्त्रों में लिखा है कि लगभग दो अरब वर्ष पृथ्वी को हो गए ।

प्रोफेसर - कहाँ लिखा है ?

बाबाश्री – आपने पढ़ा नहीं होगा, श्रीभागवत पुराण में लिखा है कि अभी सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है ।

एक मन्वन्तर ३० करोड़ वर्ष का होता है और अब तक छ: मन्वन्तर बीत चुके हैं, इस तरह ६ को ३० करोड़ वर्ष से गुणा किया जाए तो १८० करोड़ वर्ष बीत चुके हैं और सातवाँ मन्वन्तर भी आधा बीत चुका है तो १५ करोड़ वर्ष इसमें और जोड़ दो तो हो गये लगभग २ अरब वर्ष । इस प्रकार हर चीज हमारे शास्त्रों में समन्वित है । अब आपके यहाँ ये जो विज्ञान ने खोज किया है कि पृथ्वी पहले बहुत गर्म थी, पहले कुछ नहीं था, सबसे पहले गैसों की उत्पत्ति हुई, फिर गैसों से अग्नि पिंड हुआ, वह क्रमशः ठंडा हुआ और जल बना, फिर जल से ठण्डी होकर पृथ्वी बनी । यही तो हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि आकाश तत्त्व पहले बना, फिर वायु बना, उसके बाद अग्नि, तदनन्तर जल बना और सबसे अन्त में पृथ्वी बनी । इस प्रकार वेदों में सब लिखा है । मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय के विज्ञान के प्रोफ़ेसर से कहा कि हमारे वैदिक शास्त्रों और आधुनिक विज्ञान में सृष्टि की उत्पत्ति को लेकर अन्तर क्या है, कुछ नहीं है । मेरी समन्वयात्मक बातों का वे प्रोफ़ेसर कोई विरोध नहीं कर सके किन्तु इस उत्तर से वे सन्तुष्ट होकर चले गये । (अब प्रस्तुत विषय पर बाबाश्री

पुन: लौट रहे हैं और बताते हैं कि) चार प्रकार के बन्धनों या चार घेरों में पहला काल का घेरा ये है कि जैसे मान लीजिए हमने बहुत भजन किया। इसको ध्यान से समझिये। यह बहुत गम्भीर बात है क्योंकि बहुत से कर्म ऐसे होते हैं, जिनका परिणाम करोड़ों वर्षों तक भोगना पड़ता है। उदाहरण के लिए जैसे आपको पहाड़ बना दिया गया तो करोड़ों वर्ष तक पहाड़ ही बने रहो और विशाल पर्वतों की ऐसी शिलायें हैं, जिनकी उम्र लगभग ५ हजार वर्ष है – ऐसा विज्ञान भी कहता है। अब मान लीजिए कि आपको पहाड़ बना दिया गया और आपकी उम्र डेढ़ अरब वर्ष है और इस बीच में ब्रह्माजी की संध्या आ गई। ब्रह्माजी का एक दिन एक हज़ार चतुर्युग का अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का होता है और उतनी ही बड़ी उनकी रात होती है। अब मान लीजिए कि हमको पहाड़ बना दिया गया और इस बीच में ब्रह्माजी की संध्या आ गई तो साढ़े चार अरब वर्ष तक हम भी वैसे ही पहाड़ बने पड़े रहेंगे, कुछ नहीं कर सकते, हाथ-पाँव भी नहीं हिला सकते। यह काल का घेरा है, नैमित्तिक प्रलय हो गया तो अब कुछ नहीं कर सकते। ये काल का घेरा है, इसको कैसे कोई तोड़ सकता है, किसी का बाप भी नही तोड़ सकता। अरे, बाप ही नहीं रहेगा क्योंकि सृष्टि ही नहीं रहेगी। अब इस काल के घेरे में हर प्राणी बँधा है, इसको कोई तोड़ नहीं सकता। कर्म का घेरा क्या है ? ऐसा कर्म बन गया कि पाँच लाख वर्ष तक भूत योनि मिल जाये, जैसे किसी ने आत्महत्या कर लिया, सास-बहू में झगड़ा हो गया और बहू ने आत्महत्या कर ली तो वह मृत्यु के बाद लाखों वर्षों तक भूतनी बनेगी। ऐसे-ऐसे कर्म होते हैं, जिनका फल करोड़ों – करोड़ों वर्षों तक भोगना पड़ता है। इस तरह यह कर्म का घेरा है, इसको कैसे कोई तोड़ सकता है ? स्वभाव का घेरा क्या है ? अब जैसे बंदर है, इसका स्वभाव नहीं बदल सकता क्योंकि यह चंचल है। जिसका जो स्वभाव है, उसको वह जीव नहीं बदल सकता। मनुष्यों में भी ऐसे बदमाश अपराधी होते हैं - जेल में चाहे पुलिस वाले मार-मार कर उनकी चमड़ी उधेड़ दें, पर जैसे ही वे बाहर निकलेंगे, फिर वैसे के वैसे बने रहते हैं, ये स्वभाव है। स्वभाव का घेरा नहीं टूटता है; टूट जाये तो माया का बंधन खत्म हो जायेगा, जिसका जो स्वभाव है - कामी का काम का स्वभाव है, वह देखेगा कि कैसी स्त्री आ रही है, लोभी है तो जैसे मन्दिर का पंडा-पुजारी देखेगा कि कौन सेठ आ रहा है, अब वह श्रीजी को भूल गया, ठाकुरजी को भूल गया, केवल देख रहा है मंदिर के चंदा-चढ़ावे को। इस तरह जिसका जो स्वभाव है, वह उसके अधीन है। गुण का घेरा क्या है ? अस्सी से नब्बे प्रतिशत हमारी उम्र तमोगुण में बीत जाती है, ऐसी दशा में हम भजन क्या करेंगे। 'तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्। प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥' (श्रीगीताजी १४/८) इस श्लोक में भगवान् कहते हैं कि प्रमाद, आलस्य और निद्रा से जीव का पतन होता है। प्रमाद क्या है ? इसे समझिए। प्रमाद दो प्रकार का होता है – करने योग्य कार्य को न करना और न करने योग्य काम को करना, ये प्रमाद है या एक शब्द में असावधानी ही प्रमाद है।

लोको विकर्मनिरत: कुशले प्रमत्त: कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ (श्रीभागवतजी ३/९/१७)

ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं कि प्रमाद क्या है ? 'लोको विकर्मनिरत:' - विकर्म अर्थात् बेकार के कार्य; संसार में अधिकतर लोग विकर्म में लगे हुए हैं जैसे टी. वी. देख रहे हैं, ताश खेल रहे हैं आदि-आदि। साधु बनकर भी मौज मस्ती कर रहे हैं, अन्य साधकों की निन्दा कर रहे हैं तो ये सब विकर्म है और दूसरा प्रमाद है – 'कुशले प्रमत्त:' - कुशल कर्म में नहीं लगा यानि साधू होकर भी भजन नहीं कर रहा है। इस प्रकार से प्रमाद के दो भेद हैं, विकर्म में लगना और कुशल कर्म में न लगना। प्रमाद से बहुत जल्दी मनुष्य का विनाश हो जाता है यानि भगवान् काल प्रमादी की आयु का हरण कर लेते हैं। भजन करने से आयु बढ़ती है और विकर्म से आयु घटती है। कभी-कभी भजनानन्दी भी जल्दी मर जाता है, ऐसा उसके पूर्व कर्मों से समझना चाहिए किन्तु शास्त्र की बात पर सन्देह नहीं करना चाहिए। विकर्म तमोगुण है, भगवान् ने गीता में कहा –

'तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्। प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ (गीता जी १४/८)

प्रमाद, आलस्य और निद्रा – ये तीन हथियार हैं तमोगुण के । इस प्रकार ८० प्रतिशत उम्र हमारी तमोगुण में जाती है, थोड़ा समय रजोगुण यानि काम-धंधे में चला जाता है और जब कभी सतोगुण के कारण माला लेकर बैठो तो भी विचार आता है कि जल्दी माला पूरी कर लो, फिर वहाँ जाना है । भजन तो सतोगुण से भी आगे की बात है तो हम भजन क्या करेंगे लेकिन यदि किसी को शुद्ध सत्संग मिल जाये तो वह जाग जाएगा और फिर वह रघुनाथ दास गोस्वामीजी की तरह भजन करेगा । भजन तो रघुनाथ दास गोस्वामी जी करते थे – साढ़े २२ घंटे; १५-२० मिनट में वे शरीर की क्रिया कर लेते थे, २०-२५ मिनट में सो लेते थे और थोड़े समय में ही प्रसाद पाकर फिर भजन में लग जाते थे । हम जैसे लोग, जो जागे नहीं हैं, उनका ८० प्रतिशत समय तमोगुण में चला जाता है, इसीलिए प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत - ये प्रमाद, आलस्य और निद्रा आदि मनुष्य को बाँधते हैं । इस प्रकार यह गुण का घेरा है, जो मनुष्य को भजन नहीं करने देता है । अतः ये चार घेरे बताए गये – काल का घेरा, कर्म का घेरा, स्वभाव का घेरा और गुण का घेरा । इसीलिए रामायण में कहा गया – **'आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥ फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥'** सभी लोग इस बात को अच्छी तरह समझ लो, क्योंकि ज़रा-सी भूल पर दस अरब वर्ष का फर्क पड़ जायेगा । मान लो कोई ऐसा काम किया हमने कि पहाड़ बन गए, जड़ बन गए । मान लीजिए उस पहाड़ की योनि में हमको दस करोड़ वर्ष के लिए रहना है और उस बीच में हो गई ब्रह्माजी की संध्या तो साढ़े चार अरव वर्ष वो और अब एक-दो अरब वर्ष विकास में लगेगा तो हुए ६ अरब वर्ष ।

इसके अतिरिक्त कुछ समय इधर–उधर गया पर उसके बाद भी जरूरी नहीं कि मनुष्य योनि मिले । जीव पहले उद्भिज्ज, फिर स्वेदज, फिर अंडज और अन्त में जरायुज बनेगा । उसमें भी न जाने कितने कल्पों तक घूमते रहो, लाखों बार उद्भिज्ज, स्वेदज, अंडज और जरायुज बनो । इस प्रकार न जाने कितने कल्पों तक और कितनी योनियों में घूमने के बाद यह दुर्लभ मनुष्य शरीर मिलता है । (इसी सिद्धान्त को बाबाश्री इस पद में गाकर बता रहे हैं –)

'जो करना है सो कर जल्दी, यही कहना हमारा है; गया नर देह हाथों से, नहीं फिर लौट आना है ....'

इसीलिए जब जागता है मनुष्य, तभी वह भजन कर सकता है । जागना है – संसार के सत्य को जानकर भगवान् की शरण में जाना । जब शुद्ध सत्संग के द्वारा मनुष्य जाग जायेगा तब उसका भगवान् के चरणों में प्रेम हो जाएगा । इसलिए हमें श्रीजी से उनके प्रेम की ही प्रार्थना करनी चाहिए ।

श्रीसीताजी की भक्ति-शक्ति

भारतीय देवियों में सती शिरोमणि सीता जी का स्थान सबसे ऊँचा है । सीता और राम – ये दो ही भारतीय जनता के प्राण हैं । हिन्दू समाज के घर-घर में, प्राण-प्राण में सीता और राम बसे हुए हैं । श्रीराम साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं और सीता उनकी स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति हैं । इस नाते से तो वे सम्पूर्ण विश्व के ही वन्दनीय हैं किन्तु भारतीय स्त्री-पुरुषों के साथ उनका और भी घनिष्ठतम सम्बन्ध है । वे सुख-दुःख में सदा हमारे साथ रहकर हमें सान्त्वना देते और कर्तव्य मार्ग का दर्शन कराते रहते हैं । उनका जीवन हमारे लिए एक दिव्य प्रकाश है, उस प्रकाश में चलने से हमें कभी अज्ञान के अन्धकार में नहीं भटकना पड़ेगा । स्त्री के शील और धैर्य की परीक्षा होती है संकट काल में । अकेली सीता को बार-बार जितने बड़े-बड़े संकटों का सामना करना पड़ा, उतने संकट कदाचित् ही किसी स्त्री को सहन करने पड़े होंगे, उन्हें अनेक बार अग्नि परीक्षा देनी पड़ी और विपत्ति की आँच से तपकर वे सदा खरे सोने की भाँति निखर उठी थीं । यही कारण है कि भारतीय साहित्य के अधिकाँश पृष्ठ सीताजी के उज्जवल चरित्रों से ही गौरवान्वित हुए हैं । इतिहास, पुराण, काव्य से लेकर स्त्रियों के ग्राम्य गीतों तक में सीताजी की समान रूप से प्रतिष्ठा हुई है । उनका चरित्र अगाध है । जानकी नवमी के अवसर पर अत्यन्त संक्षेप में ही उनके आदर्श जीवन चरित्र की कुछ चर्चा करके लेखनी पवित्र की जायेगी । श्रीधराधाम में सीताजी के प्राकट्य से सम्पूर्ण नारी-समाज को बहुत बड़ी भक्तिमय आदर्श शिक्षा व प्रेरणा मिलती है ।

श्रीजानकीजी का सम्पूर्ण जीवन आदर्श आराधनामय है । उसमें भी चौदह वर्ष वनवासकाल का त्याग-तपस्यामय जीवन तो विशेष भाव-भक्ति की प्रेरणा देता है । जिस प्रकार से भगवान् श्रीरामावतार की चौदह वर्ष की 'वनवास-लीलाएँ' व श्रीकृष्णावतार की लगभग ग्यारह वर्ष की 'ब्रजलीलाएँ' विशुद्ध भक्ति-प्रेम का सम्यक् सन्देश देती हैं; ठीक उसी प्रकार से श्रीसीताजी की चौदह वर्ष की वनवासकाल की लीलाएँ विशुद्ध प्रेम की परमादर्श प्रेरणा देती हैं । जैसे – 'श्रीराधिकारानी का विशुद्ध 'श्रीकृष्णप्रेम' ब्रजलीलाओं में ही देखने-सुनने को मिलता है, वैसे ही श्रीसियाजू का विशुद्ध 'श्रीरामप्रेम' चौदह वर्ष की 'वनवास-लीलाओं' में ही देखने-सुनने को मिलता है । वस्तुतः त्याग-वैराग्य-समर्पण में ही वास्तविक भक्ति (विशुद्ध रति) प्रकट होती है, जो हम लोगों को साक्षात् स्वरूप से श्रीसीताजी व श्रीराधाजी के वैराग्य व समर्पणमयी विशुद्ध लीलाओं में देखने-सुनने को स्पष्ट रूप से मिलता है । जानकीजी की तरह त्याग-वैराग्य व श्रीइष्टसमर्पण (शरणागति) की सच्ची शिक्षा सीखनी चाहिए, तभी विशुद्ध भावमयी भक्ति-प्रेम का हमारे अंतःकरण में आविर्भाव होगा ।
प्राचीन काल में मिथिला प्रान्त की राजधानी मिथिला ही थी । जनक वंशी क्षत्रियों के अधिकार में होने से मिथिलापुरी का दूसरा नाम जनकपुर भी था । एक समय वहाँ सीरध्वज जनक नाम से प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा राज्य करते थे । वे शास्त्रों के ज्ञाता, परम वैराग्यवान तथा ब्रह्मज्ञानी थे । उनका जीवन एक त्यागी तपस्वी का जीवन था । इसीलिए उस समय के साधु-महात्मा, ऋषि-मुनि उन्हें राजर्षि कहते थे । एक बार राजा जनक यज्ञ के लिए पृथ्वी जोत रहे थे । उस समय चौड़े मुँह वाली सीता (हल के धँसने से बनी हुई गहरी रेखा) से एक कुमारी कन्या का प्रादुर्भाव हुआ, जो रति से बढ़कर सुन्दरी तथा साक्षात् लक्ष्मी के समान रूपवती थी । राजा ने उस कन्या को भगवान् का दिया हुआ प्रसाद माना और अपनी औरस पुत्री की भाँति बड़े लाड़-प्यार से उसका पालन किया । सीता (हल के धँसने से बनी हुई गहरी रेखा) से ही प्रकट होने के कारण कन्या का नाम 'सीता' रखा गया । जनक की पुत्री होने से वह 'जानकी' भी कहलाने लगी । जैसे आत्मा के प्रति सभी प्राणियों का स्वाभाविक आकर्षण होता है, उसी प्रकार सीताजी के प्रति माता-पिता का मन अधिक आकृष्ट था । राजा जनक के एक छोटी कन्या और थी, जिसका नाम उर्मिला था । सीता शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिनों दिन बढ़ने लगी । शरीर के साथ ही रूप, लावण्य और गुणों की वृद्धि होने लगी । इसी प्रकार माता-पिता का स्वाभाविक अनुराग भी निरन्तर बढ़ता गया ।

एक दिन सीता अपनी सखियों के साथ उद्यान में खेल रही थीं । वहाँ उन्हें दो तोते बैठे दिखायी दिए, जो बड़े ही सुन्दर थे । वे दोनों पक्षी एक वृक्ष की डाल पर बैठे-बैठे एक बड़ी मनोहर कथा कह रहे थे, वे आपस में ही कह रहे थे -

'इस पृथ्वी पर श्रीराम नाम से प्रसिद्ध एक बड़े सुन्दर राजा होंगे, उनकी महारानी का नाम सीता होगा । श्रीरामचन्द्रजी बड़े बुद्धिमान और बलवान होंगे तथा समस्त राजाओं को अपने अधीन करके सीता के साथ ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य करेंगे । धन्य हैं जानकी देवी और धन्य हैं श्रीराम, जो एक दूसरे को पाकर इस लोक में आनन्दपूर्वक विहार करेंगे ।' तोते के मुँह से ऐसी बात सुनकर सीता ने सोचा कि ये दोनों पक्षी मेरे ही जीवन की कथा कह रहे हैं । इन्हें पकड़कर सभी बातें पूछूँ । ऐसा विचारकर उन्होंने सखियों से कहा – 'यह देखो, इस पर्वत के शिखर पर जो वृक्ष है, उसकी डाली पर दो पक्षी बैठे हुए हैं । ये दोनों बहुत सुन्दर हैं । सखियो ! तुम लोग चुपके से जाकर इनको पकड़ लाओ ।' सीताजी की आज्ञा पाकर उनकी सखियाँ उस पर्वत पर गयीं और दोनों पक्षियों को पकड़ लायीं । सीताजी ने उन्हें हाथ में लेकर प्यार किया और आश्वासन देते हुए कहा – 'देखो, डरना नहीं, तुम दोनों बड़े सुन्दर हो । मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम कौन हो और कहाँ से आये हो ? राम कौन हैं और सीता कौन हैं ? तुम्हें उनकी जानकारी कैसे हुई ?' सीता के इस प्रकार प्रेमपूर्वक पूछने पर उन पक्षियों ने कहा – 'देवि ! वाल्मीकि नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़े महर्षि हैं । हम लोग उन्हीं के आश्रम में रहते हैं । महर्षि ने एक बड़ा मधुर काव्य बनाया है, जिसका नाम है – 'रामायण ।' उसकी कथा मन को बहुत प्रिय लगती है । महर्षि अपने शिष्यों को रामायण पढ़ाते हैं और सदा उसके पद्यों का चिन्तन करते रहते हैं । प्रतिदिन सुनते-सुनते हमें भी उसकी बातें बहुत कुछ मालूम हो गयी हैं । हम तुम्हें राम का परिचय देते हैं, सुनो – अयोध्या के महाराज दशरथ

महर्षि ऋष्यश्रृंग को बुलाकर उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ करावेंगे । उस यज्ञ के प्रभाव से भगवान् विष्णु ही उनके यहाँ चारों भाई क्रमशः श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के नाम से प्रसिद्ध होंगे । देवांगनाएँ भी उनकी उत्तम लीलाओं का गान करेंगी । श्रीराम महर्षि विश्वामित्र के साथ मिथिला पधारेंगे और राजा जनक के यहाँ रखा हुआ शिवजी का धनुष तोड़कर लक्ष्मीस्वरूपा सीता के साथ विवाह करेंगे । उनके अन्य तीन भाइयों का विवाह भी मिथिला में ही होगा । सुन्दरि ! ये तथा और भी बहुत सी बातें हमने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में सुनी हैं । तुमने जो कुछ पूछा था, हमने वह बता दिया । अब हमें छोड़ दो । हम दूसरे वन में जाना चाहते हैं ।' पक्षियों की बातें सीताजी के कानों में अमृत की वर्षा कर रही थीं । उन्होंने कुछ और सुनने के लिए पूछा – 'श्रीरामचन्द्रजी कैसे हैं ? उनके गुणों का वर्णन करो । तुम्हारी बातें मुझे बड़ी प्रिय लगती हैं ।' सीताजी के प्रश्न सुनकर तोते की स्त्री ने समझ लिया कि ये ही जनकनन्दिनी हैं, फिर तो वह उनके चरणों पर गिर पड़ी और बोली – 'श्रीरामचन्द्रजी का मुख कमल के समान अत्यन्त सुन्दर है । उनके नेत्र बड़े-बड़े तथा खिले हुए पंकज (कमल) की शोभा धारण करते हैं । नासिका ऊँची, पतली और मनोहारिणी है । दोनों भौंहें सुन्दर ढंग से परस्पर मिली हुई हैं । भुजायें घुटनों तक लम्बी और मन को लुभाने वाली हैं । गला शंख के समान है, विशाल वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न सुशोभित होता है । उनका कटिभाग, जंघा तथा घुटने अत्यन्त मनोहर हैं । चरणारविन्द की शोभा वर्णन से परे है । श्रीरामचन्द्रजी का रूप कितना मनोहर है, इसका वर्णन मैं क्या कर सकती हूँ ? जिनके सौ मुख हैं, वे भी उनके गुणों का बखान नहीं कर सकते । जिनकी झाँकी देखकर लावण्यमयी लक्ष्मी भी मोहित हो गयीं, उनका दर्शन करके दूसरी कौन स्त्री है, जो मोहित न हो ? मैं श्रीराम का वर्णन कहाँ तक करूँ ? वे सब प्रकार के ऐश्वर्यमय गुणों से युक्त हैं । जनककिशोरी सीता धन्य हैं, जो रघुनाथजी के साथ हजारों वर्षों तक प्रसन्नतापूर्वक रहेंगी, किन्तु सुन्दरि ! तुम कौन हो ? जो इतने प्रेम के साथ श्रीरामचंद्रजी के गुणों का वर्णन सुनती हो ।' जानकी बोलीं – 'तुम जिसे जनकनन्दिनी सीता कहती हो, वह मैं ही हूँ । श्रीराम ने मेरे मन को अभी से लुभा लिया है । वे यहाँ आकर जब मुझे ग्रहण करेंगे तभी मैं तुम दोनों को छोड़ूँगी । तुमने अपने वचनों से मेरे मन में राम को पाने का लोभ उत्पन्न कर दिया है, अतः मेरे घर में सुख से रहो और मीठे-मीठे पदार्थों का भोजन करो ।' सीताजी की यह बात सुनकर सुग्गी (मादा तोता) अनिष्ट की आशंका से काँप उठी और विनती करती हुई बोली – 'साध्वी ! हम वन के पक्षी हैं, पेड़ों पर रहते हैं और स्वच्छन्द विचरण करते हैं । तुम्हारे घर में हमें सुख नहीं मिलेगा । मैं गर्भिणी हूँ । अपने स्थान पर जाकर बच्चे पैदा करूँगी । उसके बाद फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगी ।' तोते ने भी ये ही बातें कहकर प्रार्थना की, किन्तु सीता उस सुग्गी को छोड़ने के लिए उद्यत नहीं हुईं, दोनों पक्षी बहुत रोये, गिड़गिड़ाये, किन्तु सीताजी ने बालकोचित हठ के कारण उसे नहीं छोड़ा । वे वनवासी पक्षियों की हार्दिक वेदना का अनुभव न कर सकीं । सुग्गी के लिए पति का वियोग असह्य हो गया । वह बोली – 'अरी ! मुझ दुखिनी को इस अवस्था में तू पति से अलग कर रही है, अतः तुझे भी गर्भिणी की दशा में पति से विलग होना पड़ेगा ।' यों कहकर राम-राम का उच्चारण करते हुए सुग्गी ने अपने प्राण त्याग दिए । उसे लेने के लिए एक सुन्दर विमान आया और वह दिव्य रूप धारण करके उस विमान के द्वारा भगवान् के धाम को चली गयी । पत्नी के वियोग में तोते ने भी देह त्याग किया । वही इस वैर का बदला लेने के लिए अयोध्या में धोबी के रूप में प्रकट हुआ । इस प्रकार विदेहनन्दिनी सीताजी के जीवन में आने वाले विरह-दुःख का बीज उसी समय पड़ गया ।

रामायण भी अनेक प्रकार की हैं । अद्भुत रामायण के अनुसार जब रामचन्द्रजी रावण और उसके साथी असुरों का वध करके अयोध्या वापस आ गये तो अयोध्या में राम की सेना के सभी योद्धा आपस में चर्चा करने लगे कि लंका का युद्ध कैसा था ? किसने-किसने युद्ध में कैसा पराक्रम दिखाया, कैसी वीरता के साथ असुरों के साथ युद्ध किया, इसके बारे में चर्चा होने लगी । कोई हनुमान जी के अद्भुत पराक्रम की चर्चा करता कि उन्होंने सबसे पहले किस प्रकार आकाश मार्ग से समुद्र को पार कर लिया, सीताजी की खोज की और रावण की सोने की लंका में आग लगा दी । कोई सुग्रीव की वीरता की चर्चा करता तो कोई जाम्बवान, नल-नील और अंगद के विलक्षण शौर्य की चर्चा करता । राम दल के सभी

योद्धाओं की प्रशंसा की जा रही थी । उस सभा में कुछ ऋषि-मुनि भी थे । वे लोग चुप थे । वे किसी की वीरता की चर्चा नहीं कर रहे थे । राम दल के लोगों ने उनसे पूछा कि आप लोग इस गोष्ठी में शान्त कैसे बैठे हैं ? आप किसी के पराक्रम की चर्चा क्यों नहीं करते ? विश्व विजयी रावण भगवान् राम के हाथों मारा गया । तीनों लोक उसके अत्याचार से दुखी थे, अब तो तीनों लोकों के सभी जीव उसकी मृत्यु से आनन्दित हैं फिर आप लोग इस तरह उदासीन होकर कैसे बैठे हैं ? आप लोग कुछ बोलते क्यों नहीं ? ऋषियों ने कहा – 'अरे, हम लोग क्या बोलें ? यह जो लंका का राजा रावण मरा है, यह तो मक्खी-मच्छर था । एक अन्य रावण भी है, जो अमुक द्वीप में रहता है । उसकी शक्ति की कोई थाह नहीं लगा सकता । उसके सैकड़ों मस्तक हैं और हजारों भुजायें हैं । उसको यदि आप लोग मारो तो पता चलेगा कि किसमें कितना दम है ?' ऋषियों के कहने पर इस नये रावण के द्वीप पर अयोध्या से रामजी के नेतृत्त्व में हमला कर दिया गया । राम दल के सभी प्रमुख वीर उससे युद्ध करने पहुँचे । परन्तु यह रावण इतना बड़ा प्रतापी था कि उसे युद्ध करने की जरूरत ही नहीं पड़ी । उसने तो अपने स्थान से ही एक ऐसा बाण चलाया कि रामजी की सेना के जितने भी प्रमुख महावीर योद्धा – हनुमानजी, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवन्त तथा अन्य जितने भी वीर थे, वे सब के सब अयोध्या में आकर गिर पड़े । लड़ने का कोई काम ही नहीं रहा । कोई उससे लड़ ही नहीं सका । उस समय महर्षियों ने कहा कि इस नये रावण को रामजी नहीं मार सकते हैं । मारना तो दूर रहा, उसके सामने ये खड़े भी नहीं हो सकते । सबने पूछा कि इसको कौन मार सकता है ? ऋषियों ने कहा कि इस रावण को तो जगत् जननी सीताजी ही मार सकती हैं । उस समय सबके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर जानकी जी उस रावण से युद्ध करने पहुँचीं और उन्होंने उसका संहार कर दिया । इसलिए पहले सीताजी, पीछे रामचन्द्रजी जैसे ब्रज में पहले श्रीराधा, पीछे श्रीकृष्ण । 'जय सिया राम जय जय सियाराम' श्रीकिशोरीजी की कृपा के बिना भगवान् की कृपा नहीं मिलती है । बिना किशोरी जी की कृपा के कुछ नहीं है चाहे राम हों अथवा कृष्ण हों । देवराज इंद्र का पुत्र था जयन्त । वह कौवे का रूप धारणकर वन में गया, जहाँ सीता-रामजी विराजमान थे । उसने सीताजी के शरीर पर चोंच से आघात किया । गोस्वामी तुलसीदासजी ने मर्यादा के कारण लिखा है कि उसने सीताजी के चरणों में चोंच से प्रहार किया किन्तु वाल्मीकि रामायण के अनुसार उसने जानकी जी के वक्षःस्थल में चोंच से आघात किया । उस समय रामजी ने कुपित होकर एक हल्का सा बाण जयन्त के पीछे छोड़ा । उस बाण से भयभीत होकर वह तीनों लोकों में उड़ता गया किन्तु जहाँ भी जाता उसे अपने पीछे रामजी का बाण आता दिखाई पड़ता । जयन्त रामजी के बाण से बचने के लिए इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि सभी लोकों में गया किन्तु किसी ने उसको शरण नहीं दी, किसी ने उसकी रक्षा नहीं की । नारदजी ने उसे देखा और कहा – 'अरे, तू कहाँ भाग रहा है ? कहीं भी चला जा, यह रामजी का अमोघ बाण है । इससे तुझे कोई नहीं बचा सकता । इसलिए जिनका यह बाण है, उन प्रभु रामजी की ही शरण में जा ।' नारदजी के कहने पर जयन्त कौवे के रूप में उड़ता हुआ रामजी के पास पहुँचा और उनके चरणों में गिर पड़ा । वह बहुत घबराया हुआ था, अपनी आँखें भी भय के कारण नहीं खोल पा रहा था । भगवान् राम ने उसको शरण नहीं दी क्योंकि वे तो कायदे-कानून में बंधे हैं । श्रीरामजी का कानून है –

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥ (श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड – ४४)

जब तुम भगवान् के सामने जाओगे तब तुम्हारे पाप नष्ट होंगे । जयन्त भगवान् के पास गया परन्तु शरण में जाने के नियम के अनुसार उसका शरीर पूरी तरह से रामजी के सम्मुख नहीं था, उसका मुख भय के कारण दूसरी तरफ था । इसलिए रामजी ने उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया परन्तु अत्यन्त वात्सल्यमयी जानकी जी, जिनका इस दुष्ट जयन्त ने अपराध किया था, उन्होंने उस पर दया की । माँ अपने पुत्र पर बहुत दया करती है । पुत्र चाहे कितना भी नालायक हो, छोटा बच्चा माँ के शरीर पर मल-मूत्र त्याग करता है, फिर भी माँ उसे प्यार करती है । जब संसार की साधारण माता अपने पुत्र से इतना प्यार करती है, फिर जानकी जी तो जगत् जननी हैं । संसार के सभी जीव उनकी ही संतान हैं । इसलिए उन्होंने अपने प्रति अपराधी दुष्ट जयन्त पर भी दया की । इधर प्रभु तो सोच रहे हैं कि यह जयन्त अभी ठीक

तरह से मेरे सन्मुख नहीं हुआ है । यह धरती पर मेरे सामने पड़ा अवश्य है किन्तु इसका मुख मेरी ओर होना चाहिए । तब तो माता सीता ने जयन्त का मुख अपने हाथों से पकड़कर रामजी के सन्मुख कर दिया और कहा कि कैसे भी हो, यह आपकी शरण में आया तो है । बेचारे जीव में इतनी बुद्धि कहाँ है कि भगवान् की शरण में जाने पर अपने मुख को किधर करें, हाथ-पाँव कैसे करें ? इस स्थिति में मैया जानकी ने घबराये हुए कौवे जयन्त का मुख घुमाकर रामजी की ओर कर दिया तब रामजी ने उसको अभय दान दिया । इसलिए रामोपासना में पहले सीताजी, पीछे राम । जय सियाराम जय जय सियाराम । श्रीजनकनन्दिनी जी के बारे में लिखा है - 'पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा । सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा ॥' सीताजी इतनी सुकुमारी थीं कि या तो वे पलंग पर बैठती थीं या लेटी रहती थीं अथवा मखमल की गद्दी पर बैठती थीं या कौशल्या जी की गोद में बैठती थीं । खाली जमीन पर उन्होंने कभी अपना पाँव नहीं रखा क्योंकि इतनी अधिक वे सुकुमारी थीं परन्तु जब प्रभु श्रीराम वन को चले तो जानकीजी ने दिखाया कि प्रेम क्या वस्तु है ? वे श्रीरामजी के साथ जंगल में चली गयीं । क्यों गयीं ? प्रेम का महत्त्व दिखाने के लिए गयीं कि प्रेम क्या है ? भोग लिप्सा के लिए वे वन में अपने पति श्रीरामजी के साथ नहीं गयी थीं । जंगल में उन्होंने बहुत भयानक कष्ट सहे । इसीलिए आज तक राम अवतार में सीता-रामजी के चौदह वर्ष के वनवास की ही लीला गाई जाती है, जबकि रामजी तो तेरह हजार वर्षों तक पृथ्वी पर रहे किन्तु १३ हजार वर्ष की लीला नहीं गाई जाती है, केवल १४ वर्ष की लीला गाई जाती है, जिसमें सीता-रामजी ने जंगल में बहुत से कष्ट सहे । उनके जीवन से हमें यह शिक्षा मिलती है कि धर्म के लिए हमें कष्ट सहना चाहिए, मुसीबत का डटकर सामना करना चाहिए । 'राजा जनक राज की बेटी सीता वन में प्यासी जाये ।' जो राजा की बेटी थीं, दिन-रात राजमहल में रहती थीं । जिनको पीने के लिए सोने के प्यालों में बढ़िया शरबत उपलब्ध रहते थे, वनवास के समय वे आज कई कोस तक पैदल चल रही हैं किन्तु जंगल में कहीं पानी का नाम भी नहीं है । 'वन में प्यासी जाए, सीता वन में प्यासी जाए ....'

विशुद्ध प्रेम का स्वरूप

बाबाश्री के सत्संग '१७/१२/२००२' से संकलित

रामजी ने अयोध्या का राजा बनने के कुछ समय पश्चात् निन्दा होने के कारण अपनी प्रजा की सन्तुष्टि के लिए जानकीजी का त्याग कर दिया था । उस समय वे गर्भिणी थीं । ९९६ वर्षों तक सीताजी वाल्मीकिजी के आश्रम में रहीं । १० हजार वर्षों तक रामजी बिना सीताजी के रहे । दस हजार वर्ष के बीच में रामजी ने बहुत से यज्ञ किये । हर यज्ञ में भार्या की आवश्यकता होती है तो अलग-अलग यज्ञों के लिए सोने की सीता की प्रतिमायें बनायी गयीं, उनमें प्राण प्रतिष्ठा की गयी । जब रामजी के सभी यज्ञ पूर्ण हो गये तो वे सोने की हजारों सीतायें रामजी के पास आयीं । उन्होंने रामजी का हाथ पकड़ लिया । रामजी ने उन्हें मना किया तो वे स्वर्ण सीतायें बोलीं कि हम तो आपकी भार्यायें हैं । आप हमारा त्याग नहीं कर सकते हैं । अब तो रामचन्द्रजी सोचने लगे कि मैंने मूल सीता का तो त्याग कर दिया परन्तु अब ये इतनी सीतायें कहाँ से आ गयीं ? स्वर्ण सीताओं ने रामजी से कहा कि आपने यज्ञ करने के लिए विधिपूर्वक हमारे साथ पाणिग्रहण किया है और अब अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर आप हमारा त्याग करते हैं तो आपको अधर्म लगेगा । उनकी ऐसी बात सुनकर रामचन्द्रजी घबरा गये । उन्होंने एक सीता का त्याग किया तो हजारों सीतायें आ गयीं । रामजी ने स्वर्ण सीताओं से कहा कि अधर्म से बचने के लिए मैं आप लोगों को छोड़ तो नहीं सकता किन्तु आप लोग प्रतीक्षा करो । द्वापर के अन्त में ब्रज-वृन्दावन धाम में मैं आप सबको ग्रहण करूँगा । रामजी की प्रतिज्ञा के अनुसार इन स्वर्ण सीताओं ने द्वापर के अंत में ब्रज में जन्म लिया और ब्रजेश्वरी श्रीराधारानी की आधीनता स्वीकार की तो उन्होंने श्रीकृष्ण रूप में राम की ही प्राप्ति कर ली ।

प्रेम निष्काम और निर्हैतुक होता है । इस मायामय संसार में ऐसा प्रेम सम्भव नहीं है । सीताजी रामजी के त्याग करने के बाद ९९६ वर्षों तक वाल्मीकि जी के आश्रम में रहीं । इसके बाद भी १० हजार वर्षों तक रामजी बिना सीता

के रहे । उन पर सीताजी के प्रति कठोरता करने का आरोप लगाया जाता है किन्तु वास्तविकता यह है कि वे सीताजी के इतने अधिक अनन्य प्रेमी थे कि उन्होंने सभी के बहुत आग्रह करने पर भी किसी अन्य स्त्री से विवाह नहीं किया । कुछ लोग कहते हैं कि राजा दशरथ के सात सौ (७००) रानियाँ थीं और कुछ ग्रंथों में ऐसा वर्णन मिलता है कि दशरथ जी के ३६० (तीन सौ साठ) रानियाँ थीं, जिनमें कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि तीन पटरानियाँ थीं । राजाओं के लिए बहु विवाह की प्रथा थी फिर भी रामजी ने अपने पिता के द्वारा बहुत से विवाह करने पर भी एवं स्वयं बहुत बड़े पितृ भक्त होते हुए भी सीताजी के प्रति अनन्य प्रेम के कारण उन्होंने १० हजार वर्षों तक किसी अन्य स्त्री से विवाह नहीं किया, यद्यपि उन्होंने इस अवधि में सीताजी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण दुःसह्य विरह व्यथा को सहा । इसी प्रकार जनकनन्दिनी जी ने भी प्रेम का निर्वाह किया । वे ९९६ (नौ सौ छियानबे) वर्षों तक वाल्मीकि जी के आश्रम में केवल रामरत रहीं । उन्होंने किसी की ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा । चौदह वर्ष के वनवास के दौरान भी जब रावण लीला दृष्टि से उनका हरण करके लंका में ले गया और वे अशोक वाटिका में रहीं तो हनुमानजी ने वहाँ सीताजी की जो दिनचर्या देखी, उसके बारे में रामचन्द्र जी से वर्णन किया है – **नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।**

लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥ (रा. सुन्दर का.-३०)

इतना उच्च कोटि का सीताजी का रामजी के प्रति अनन्य प्रेम था और यह प्रारम्भ से ही था । विवाह के पहले पुष्प वाटिका के प्रसंग में लिखा है – **प्रीति पुरातन लखइ न कोई ।** (रा.बाल काण्ड – २२९)

सीताजी और रामजी का प्रेम कोई आज का नवीन प्रेम नहीं है । यह प्रेम तो अनादि है । इसी प्रकार रामजी के द्वारा धनुष भंग होने के बाद जब सीताजी जयमाल पहनाने के लिए रामजी के निकट गयीं तो वे उनके चरणों का स्पर्श नहीं कर रही थीं । बहुत से लोग इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि सीताजी को भय था कि जिस प्रकार वन में शिला के रूप में पड़ी अहिल्या रामजी के द्वारा चरण स्पर्श होने पर सीधे आकाश में चली गयी, उसी प्रकार कहीं मैं भी इनके चरणों का स्पर्श करने पर आकाश में न चली जाऊँ । यह भय तो सीताजी के मन में था परन्तु उस भय के पीछे एक कारण था – प्रीति पुरातन । सीताजी ने सोचा कि मेरा और प्रभु का प्रेम तो अनादि काल से है किन्तु इस समय लीला चल रही है, अभी तो इनकी बहुत सी लीला बाकी है । मेरे अतिरिक्त ये किसी अन्य स्त्री को अपनी भार्या के रूप में ग्रहण नहीं करेंगे । ऐसी स्थिति में इनकी लीला आगे कैसे चल पाएगी । मेरे अतिरिक्त इनकी सेवा कौन करेगा ? यह सीताजी के प्रेम की निष्कामता थी । जयमाल पहनाने के बाद सीताजी रामजी के चरण स्पर्श नहीं कर रही थीं । उस समय की उनकी मनोस्थिति का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं – **गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि ।**

मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥ (रा.बाल काण्ड – २६५)

गोस्वामीजी लिखते हैं कि सीताजी के उस दिव्य प्रेम को केवल रामचन्द्रजी ही समझ पाये कि ये मेरे चरणों का स्पर्श क्यों नहीं कर रही हैं । इन्हें डर इस बात का नहीं है कि चरण स्पर्श करते ही अहिल्या की तरह मैं आकाश में चली गयी तो मेरा इनसे वियोग हो जायेगा, अपितु उन्हें डर इस बात का है कि मेरे अतिरिक्त प्रभु की सेवा कोई कर नहीं पायेगा । इसका प्रमाण रामायण ही है । लंका में रावण के वध के उपरान्त जब राम जी सीताजी और अपने समस्त परिकरों के साथ अयोध्या लौट आये और उनका राज्याभिषेक भी हो गया । रामजी राजा बन गये और सीताजी रानी बन गयीं तो यद्यपि रामजी की सेवा करने के लिए महल में हजारों दास-दासियाँ थीं ।

जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी । बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी ॥

निज कर गृह परिचरजा करई । रामचंद्र आयसु अनुसरई ॥ (रा. उत्तर काण्ड – २४)

अनेक दास-दासियों के होते हुए भी सीताजी स्वयं अपने हाथों से ही रामजी की सेवा करती थीं । दासियों से सेवा नहीं करवाती थीं । मेरे द्वारा सेवा के बिना स्वामी को कष्ट होगा, इसी भय से जयमाल के बाद सीताजी रामजी का चरण स्पर्श नहीं कर रही थीं । उनका भय ऐसा नहीं था कि कहीं मेरा सुख न चला जाए । इसीलिए उस प्रसंग में

उल्लेख है – प्रीति अलौकिक जानि । सीताजी की प्रीति अलौकिक है । इस संसार की तरह नहीं है जैसे एक लौकिक स्त्री होती है, वह जब विधवा होती है तो क्यों रोती है ? अपने सुख के लिए रोती है कि पति के बिना अब मेरा समय कैसे व्यतीत होगा लेकिन वहाँ पर अलौकिक प्रेम है । सीताजी यह विचारकर भयभीत हो जाती हैं कि मेरे बिना प्रभु की सेवा कैसे होगी ? एक रसिक ने लिखा है – 'छूरी चरनन रेणुका मूरी मदन मयंक, पूरी हती कलंकिनी पूरी है निकलंक ।'

यह अलंकारिक छन्द है । इसमें कहा गया है – छू री चरनन रेणुका । तू रामजी की चरण रज को छू अर्थात् उसका स्पर्श कर । मूरी मदन मयंक – यह प्रेम की संजीवनी औषधि है । पूरी हती कलंकिनी – जो रामजी की चरण रज का स्पर्श करके आकाश में चली गयी, वह अहिल्या तो कलंकिनी थी, इसीलिए वह इन प्रभु श्रीराम की सेवा से वंचित हो गयी । पूरी है निकलंक – सीता ! तू तो पूर्णतया निष्कलंक है । तेरा प्रेम दिव्य है ।

अतः सीताजी का प्रभु राम के प्रति प्रेम अलौकिक है, लौकिक नहीं है । प्रेम की यही अलौकिकता है कि लगता है कि सीता-राम अथवा राधा-माधव अलग हैं किन्तु वे अलग नहीं हैं । सीता-राम के अलौकिक प्रेम का अन्य उदाहरण है । जब हनुमानजी सीताजी की खोज के लिए लंका जा रहे थे, उस समय रामजी ने सीताजी के लिए हनुमानजी के माध्यम से सन्देश दिया । रामजी जानते थे कि सीताजी की खोज में तो अरबों बन्दर गये हैं परन्तु ये हनुमान ही सीताजी के पास पहुँचेंगे । इसलिए सीताजी के लिए मुद्रिका उन्होंने हनुमानजी को ही दी, अन्य वानरों को नहीं दी । रामजी ने हनुमानजी से कहा कि तुम सीता के पास जाकर मेरा सन्देश कह देना । हनुमानजी अशोक वाटिका जाते हैं और सीताजी से कहते हैं कि स्वामी ने आपके लिए कुछ कहा है । जानकी जी ने पूछा कि प्रभु ने मेरे लिए क्या कहा है ? हनुमानजी राम जी का सन्देश उन्हें सुनाते हैं – हे भामिनी ! तुम्हारे बिना मेरे लिए सृष्टि की सभी बातें विपरीत हो गयी हैं । **'कहेउ राम बियोग तव सीता । मो कहुँ सकल भए बिपरीता ॥'** रामजी कहते हैं कि मेरे लिए सारी सृष्टि उलट गयी है ।

यह कोई कवि कल्पना नहीं है । इसका विस्तृत वर्णन संस्कृत के कवियों ने उत्तर राम चरित में किया है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने उसे विस्तार से नहीं लिखा है । रामजी आगे कहते हैं –

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू । कालनिसा सम निसि ससि भानू ॥

वृक्षों में नये-नये पल्लव आते हैं तो ये मुझे आग के समान प्रतीत होते हैं । उससे मेरा शरीर जलता है । प्रत्येक रात्रि मेरे लिए कालरात्रि की तरह हो गयी है । चन्द्रमा मुझे सूर्य की तरह जलाता है ।

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा । बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥

जब मैं कमलों के वन में जाता हूँ तो कमल मुझे भाले के समान प्रतीत होते हैं । जब वर्षा के चार महीने आते हैं और वर्षा होती है तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश से गरम तेल बरस रहा है । इस तरह मैं उस वर्षा में जलता हूँ । "जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥" जो पहले हित करते थे, वे अब मुझे पीड़ा देने लगे हैं । जब तीन प्रकार की ठण्डी हवा चलती है तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि अजगर के मुख से गरम साँस, उसकी फुफकार आ रही है । 'कहेहु तें कछु दुख घटि होई । काहि कहौं यह जान न कोई ॥' कहने से दुःख घट जाता है किन्तु मैं अपना दुःख किसी से नहीं कह सकता हूँ । मेरी ऐसी मर्यादायें हैं । राम की मर्यादाओं ने ही राम को और अधिक व्यथित किया है । अंत में प्रेम का स्वरूप बताते हुये रामजी कहते हैं – **'तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।'** प्रेम तत्त्व का वर्णन केवल दो चौपाइयों में ही रामजी ने कर दिया है । इसमें बड़ा ही दिव्य भाव है । रामजी कहते हैं – हे प्रिये ! प्रेम को तो केवल मैं और तुम ही जानते हैं । इसी बात को सूरदासजी ने भी कहा है –

'प्रीति की रीति को पैंड़ो ही न्यारो । कै जाने वृषभानु नन्दिनी कै जाने वह नन्द दुलारो ॥'

प्रेम को तो केवल वृषभानुनन्दिनी राधारानी जानती हैं और नन्दनन्दन श्यामसुन्दर जानते हैं । उनके अतिरिक्त अन्य कोई विशुद्ध प्रेम के स्वरूप को नहीं जानता है । इसी प्रकार यहाँ रामचन्द्र जी कहते हैं कि हे सीते ! मेरे और तुम्हारे दिव्य प्रेम को हमारे अतिरिक्त कोई तीसरा व्यक्ति नहीं समझ सकता । उस प्रेम का स्वरूप क्या है ? उसका स्वरूप यह है

कि राम तो यहाँ हैं किन्तु उनका सूक्ष्म मन, बुद्धि, अन्तःकरण राम के पास नहीं है । वह तो सीता के पास है । सीता लंका में हैं किन्तु उनका सब कुछ राम के पास है । प्रेम की एकता कभी टूटती नहीं है । प्रेम को अलग करने वाला कोई आज तक पैदा ही नहीं हुआ । स्थूल शरीर से अलगाव दिखाई पड़ता है किन्तु सच्चा प्रेम तो वही है –

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥ (रा. सुन्दर काण्ड – १५)

मैं यहाँ हूँ किन्तु मेरा सब कुछ, मेरा मन-बुद्धि आदि तुम्हारे पास है । इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कह सकता हूँ । इसके और आगे प्रेम की स्थिति नहीं होती है । बस यही प्रेम है ।

गुणातीत ही पराभक्ति

बाबाश्री के सत्संग (६ अक्टूबर, २०१३) से संकलित

परीक्षितजी ने शुकदेव जी से प्रश्न किया कि भगवान् ने परायी स्त्रियों के साथ रास में नृत्य-गान आदि किया, उनका स्पर्श किया, ये सब क्यों किया क्योंकि धर्म की जितनी भी मर्यादायें हैं, उसके उपदेश करने वाले भगवान् हैं । जो जैसा कहता है, यदि वैसा ही करने लग जाए तो धर्म का रक्षक बन जाता है । तीनों का जोड़ा है – पहला है वक्ता, उसके बाद दूसरा है कर्ता, तीसरी श्रेणी है अभिरक्षिता ।

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता । प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥ (भा.१०/३३/२८)

परीक्षितजी ने जो प्रश्न किया, यह एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसमें बहुत बड़ी शिक्षा भी निहित है । मनुष्य जैसा कहता है, वैसा ही करने लग जाए तब तो वह यथार्थ वक्ता है किन्तु होता यह है कि हम केवल भाषण करते हैं और क्रिया वैसी कर नहीं पाते हैं । केवल हम त्याग की बात करते हैं और यदि वास्तव में हम त्याग करने लग जाएँ तो धर्म के रक्षक बन जायेंगे । जब व्यक्ति जैसा कहता है और वैसा ही करता भी है तो वह धर्म का रक्षक बन जाता है ।

आज हमारे आध्यात्मिक समाज में ऐसा नहीं है, उपदेशक लोग केवल भाषण देते हैं परन्तु उनकी क्रिया वैसी नहीं रहती है तो कोई चमत्कार सामने नहीं आता है । अगर त्याग होता है तो व्यक्ति धर्म का रक्षक बन जाता है । वर्तमान काल में भारत में अध्यात्म सम्बन्धी वक्ता तो बहुत हैं, जो भाषण देते हैं – त्याग करो, भोगों को छोड़ो परन्तु वास्तविकता यह है कि हम लोग लड्डू-कचौड़ी आदि स्वादिष्ट भोजन को अर्थात् इन्द्रिय भोगों को छोड़ नहीं पाते हैं । कर्ता यदि क्रिया में नहीं है तो सच्चा रक्षक नहीं बन पाता है । यदि हम जैसा बोलते हैं, वैसा ही करने लग जाएँ तो समाज व धर्म के सच्चे रक्षक बन जायेंगे । सच्चाई एक दिन अवश्य ही उठती है, थोड़ा समय लग जाता है । मनुष्य गलती करता है, अपनी भक्ति को स्वयं कमजोर बना लेता है ।

इसीलिए श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध के अध्याय २९ के श्लोक ८ में सबसे पहले तामस भक्ति का वर्णन किया गया है । हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका नाम तो है भक्ति लेकिन कहीं वह तामसी भक्ति तो नहीं है । इसे हर व्यक्ति को समझना चाहिये ।

अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा । संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ (भा.३/२९/८)

भगवान् कहते हैं कि भक्ति तो बहुत से लोग करते हैं लेकिन अधिकतर लोग तामसी भाव में चले जाते हैं । हिंसा, दम्भ और मात्सर्य – ये तीन चीजें भक्ति को तामसी बना देती हैं । इससे सावधान रहना चाहिए, नहीं तो जो कुछ भी अच्छा किया जाता है, वह सब नष्ट हो जाता है । जो तीन चीजें भक्ति को तामसी करती हैं, उनमें पहली चीज है हिंसा । यहाँ हिंसा का अभिप्राय केवल मारना-पीटना ही नहीं है । किसी का यश नष्ट करना, किसी की निन्दा करना – ये सब हिंसा में आता है । दूसरे की निन्दा सुनकर प्रसन्न होना, दूसरे के पतन को देखकर हँसना – ये सब हिंसा है । भक्ति को तामस करने वाली दूसरी चीज है – दम्भ यानि दिखावा । हम जो कुछ भी भक्ति के कार्य कर रहे हैं, उसे लोग देखें, हमारी प्रशंसा करें – ये सब दिखावा करना ही दम्भ है और यह भक्ति को तामस कर देता है । भक्ति को तामस करने वाली तीसरी

चीज है – मात्सर्य अर्थात् ईर्ष्या-द्वेष करना । किसी दूसरे की प्रशंसा हो रही है और हम उसे सह नहीं पाये तो ऐसा लक्षण द्वेष के अन्तर्गत आता है, यही है मात्सर्य । इस तरह ये तीन चीजें हमारी भक्ति को तामस बना देती हैं । श्लोक ३/२९/७ में कहा गया है – **भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।**

स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ (श्रीभागवतजी ३/२९/७)

स्वभाव और गुणों के हिसाब से भक्तियोग बहुत प्रकार का होता है । हमारा स्वभाव तामसी है तो हम जो भी भक्ति करेंगे, वह तामस में बदल जायेगी । गुण के अन्तर्गत हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण । यदि हमारे स्वभाव में तमोगुण की प्रधानता है तो हम जो भी साधन जप-तप, कथा-कीर्तन, सेवा आदि करेंगे, वह सब तामस भक्ति में बदल जाएगा । उसको कोई भी संसार में सुधारने वाला नहीं है । ये सब भगवान् के वाक्य हैं । अधिकतर हम जैसे लोग तामसी हैं किन्तु अपने स्वभाव व गुणधर्म को नहीं समझ पाते हैं । हम जैसे लोग माला जप करते हैं और कहते हैं कि हम चार लाख नाम जप प्रतिदिन करते हैं । चार लाख नाम जप तो अवश्य करते हो परन्तु इसके पहले यह नहीं समझ पाते हो कि तुम्हारा स्वभाव कैसा है, तुम्हारा गुण कैसा है ? कहीं स्वभाव और गुण में तमोगुण की प्रधानता तो नहीं है ? यदि तुम्हारा गुण और स्वभाव तामस है तो तुम चार लाख नहीं, आठ लाख नाम जप भी प्रतिदिन करोगे तो वह तामस में बदल जाएगा । इस सूक्ष्म बात को हम लोग समझ नहीं पाते हैं और मिथ्या अहंकार बढ़ा लेते हैं कि हम तो इतने लाख नाम जप करते हैं, इतना पाठ करते हैं, सारी रात कीर्तन करते हैं । सारी रात कीर्तन तो करते हो लेकिन इस पर भी ध्यान दो कि तुम्हारा स्वभाव कैसा है ? तुम्हारा गुण कैसा है ? इस पर विचार करो । यह विचार करने की किसी को फुरसत ही नहीं है, अपने-आप को देखने की किसी के अन्दर योग्यता ही नहीं है कि अपने विवेक से हम स्वयं को समझें कि किस समय हमारा स्वभाव तामसी बना, किस समय राजस बना, किस समय सात्त्विक बना ? इसे विवेक कहते हैं । विवेक के बिना मन्दिर में पुजारी जीवन भर भगवान् के श्रीविग्रह के सामने घंटी बजाता है, सेवा-पूजा करता है, परन्तु उसकी दृष्टि बाहर रखे थाल पर रहती है कि कितना पैसा चढ़ा है । उसका स्वभाव राजस ही बना रहता है । मनुष्य का स्वभाव तभी बदलता है, जब किसी निष्किञ्चन महापुरुष की शरण होती है । ऐसे महापुरुष की शरणागति से ही जीव का स्वभाव बदलता है, नहीं तो प्रह्लादजी ने कहा है – **नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।**

महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥ (भा.७/५/३२)

स्वभाव कभी भगवान् की ओर नहीं जाएगा क्योंकि हमारा स्वभाव तो विषयों के भोग में फँसा हुआ है । बिना निष्किञ्चन महापुरुष के चरण रज की अभिषेक के अर्थात् उनकी अनन्य शरणागति के बिना स्वभाव कभी भगवान् की ओर नहीं जायेगा । **'मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।**

अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥' (भा.७/५/३०)

हमारी बुद्धि भगवान् के चरणों को छू नहीं सकती है, न तो दूसरे का संग करने से और न स्वयं के प्रयत्न माला आदि के द्वारा जप करने से । उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त शब्द परतः का अर्थ हुआ कथा आदि सुनने से तथा स्वतो यानि स्वतः – स्वयं जो साधन करते हैं, इससे भी बुद्धि भगवान् में नहीं लगेगी क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ अन्धकार की ओर जा रही हैं, चबे हुए विषयों को चबा रही हैं । चबे को चबाना का अभिप्राय है कि हम लोग जो विषय भोग करते हैं तो क्या यह प्रवृत्ति इसी जन्म से है ? क्या इसी जन्म से ही हम भोग में प्रवृत्त हो रहे हैं, नहीं-नहीं, भोग की प्रवृत्ति अनादि काल से है । अनादि काल से, अगणित जन्मों से हम लोग विषयों को भोग रहे हैं । कितने ही जन्मों में हम कुत्ता बने तो वहाँ कुतिया को ढूँढ़ते रहे, गधा बने तो गधी के पीछे घूमते फिरे । इस तरह हम चबे हुए को अर्थात् अनेक जन्मों से भोगे हुए विषयों को ही फिर से इस जन्म में भी बार-बार चबा रहे हैं, उन्हीं का भोग करने में लगे हुए हैं, थूके हुए को पुनः चाट रहे हैं, ऐसी स्थिति में हमारी बुद्धि भगवान् में कैसे लग जायेगी ? अब क्या करें ? वर्तमान जगत में दिखाई भी यही देता है कि अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिरों में सेवायत लोग जीवन भर सेवा करते हैं परन्तु उनके मन की वृत्ति अन्तिम समय तक नहीं

बदलती है । चाहे कोई आचार्य है, चाहे गोस्वामी है, कोई भी कितनी ही सम्मानित स्थिति में है, उसकी वृत्ति तभी बदलेगी जब वह चबे हुए को चबाना छोड़ देगा, भोगे हुए विषयों को पुनः भोगना छोड़ देगा लेकिन होता यह है कि हम लोग इन्हें छोड़ नहीं पाते हैं । अब क्या किया जाये ? क्या इन विषयों को, इन भोगे हुए विषयों को छोड़ने का कोई उपाय है तो प्रह्लाद जी कहते कि हाँ, उपाय एक ही है – महीयसां पादरजोऽभिषेकं । महीयसां का अर्थ होता है महात्मा । पाद रजो अभिषेक का अर्थ है कि महात्माओं के चरणों की रज का अभिषेक किया जाए, उनकी चरण रज में स्नान किया जाए । अब प्रश्न है कि वे महात्मा कैसे होते हैं ? महात्मा सन्यासी होने चाहिए कि वैष्णव तो भागवत में यह सब झगड़ा नहीं है । प्रह्लाद जी कहते हैं कि निष्किञ्चन महापुरुषों की चरण रज में जाकर स्नान करो अर्थात् अनन्य भाव से उनकी शरण ग्रहण करो तब तुम्हारा स्वभाव बदलेगा, गुण छूटेंगे और इसके बाद जो भक्ति करोगे तो वह सच्ची भक्ति होगी ।

हम लोग तामस भक्ति करते हैं, एक-दूसरे से होड़ रहती है, ईर्ष्या-द्वेष, दम्भ (दिखावा), यही सब रहता है । इसके अतिरिक्त समाज में और कुछ नहीं दिखाई देता है । वर्तमान का हमारा आध्यात्मिक समाज ही विचित्र हो गया है, इस समाज में मात्सर्य प्रवेश कर गया है कि कैसे एक-दूसरे की टांग खींचें । कितने ही लोग मीडिया के माध्यम से, साहित्य के माध्यम से अन्य सम्प्रदायों की आलोचना करने में लगे रहते हैं । किसी के अच्छे कार्यक्रमों की भी निन्दा करने में ही व्यस्त रहते हैं । ऐसा करने से सत्य के मार्ग पर चलने वालों का कोई नुकसान तो होता नहीं, निन्दक लोग ही निन्दा करके अपनी भक्ति को नष्ट कर लेते हैं, तामस कर लेते हैं । संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः – जिसका स्वभाव संरम्भी (क्रोधी) होता है, संरम्भी कौन है ? हर समय छोटी-छोटी बात पर जो क्रोध करता है, उसको संरम्भी कहते हैं । संरम्भी स्वभाव होता है तो भक्ति तामसी हो जाती है । भागवत को समझो – छोटी सी बात पर खीझना, गुस्सा करना , उदास होना – इस स्वभाव को संरम्भी कहते हैं । आपने किसी से पानी माँगा और उसने नहीं दिया तो आपकी आँख बदल गयी, उसको डाँटने लगे, यह संरम्भ है । छोटी-छोटी बात पर क्रोधावेश आ जाता है । यह भक्ति को तामस कर देगा, चाहे तुम पाठ करो, चाहे कीर्तन करो, चाहे जप करो । तुम्हारा सारा साधन जप-तप, कीर्तन आदि तामस में बदल जाएगा । अब दूसरी चीज है कि भक्ति राजस कैसे होती है, इसे समझो ।

विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा । अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥ (भा.३/२९/९)

अर्चा यानि अर्चना । भगवान् की पूजा करना, उनको बहुत विशाल छप्पन भोग लगाना, बहुत विशाल फूल बंगला बनाना – ये सब अर्चना के अन्तर्गत आता है । ३ चीजें हैं जो भक्ति को राजस कर देती हैं जैसे मान लो कि हम मन्दिर में बैठे हैं और देख रहे हैं कि कौन सी स्त्री सुन्दर है, दृष्टि गड़ाकर उसी को देख रहे हैं । यह क्या है ? यह विषय है । बैठे हैं मन्दिर में, ऊपर से प्रतीत होता है कि श्रीजी का, बिहारीजी का दर्शन करने जा रहे हैं परन्तु ध्यान है विषय पर । क्या ऐसा करने पर हम भगवान् को ठग सकते हैं ? उपरोक्त श्लोक में भगवान् कहते हैं कि विषय, यश (नाम हो जाए) और ऐश्वर्य (मालकियत) – ये चीजें भक्ति को राजस बना देती हैं । इसीलिए स्वामी हरिदासजी की परम्परा के अनन्य रसिकाचार्य भगवत रसिक जी ने कहा है कि मन्दिर में भजन नहीं करना चाहिए क्योंकि मन्दिर में हजारों लोग दर्शन करने आते हैं, स्त्रियाँ आती हैं, धनी लोग आते हैं । मन्दिर में दृष्टि रहती है कि कौन आया, कौन गया ? ये सब मन्दिर में अधिक होता है । भगवत रसिकजी कहते हैं कि जिन स्थानों पर भजन नहीं करना चाहिए, उनमें पहला है कि हाट अर्थात् बाजार में भजन नहीं करना चाहिए । बाट – रास्ते में भजन नहीं करना चाहिए । गाँव की चौपाल पर भजन नहीं करना चाहिये । इसी प्रकार धर्मशाला में भजन नहीं करना चाहिए क्योंकि वहाँ लोग भौतिक चर्चा करते हैं । देवल यानि मन्दिर में भजन नहीं करना चाहिए तथा श्मशान में भी भजन नहीं करना चाहिए । इन सात स्थानों में भजन नहीं करना चाहिए – यह महापुरुषों की वाणी है । हाट, बाट, चौपाल, देवल (मन्दिर), चूरी (धर्मशाला), मसान (श्मशान) और घाट । ये सात स्थान हैं, जहाँ पर भजन करने का निषेध किया गया है । इनमें से एक है कि मन्दिर में भजन नहीं करना चाहिए, यह बात समझ में नहीं आ सकती । मन्दिर में बहुत से लोगों का आवागमन होता रहता है, इसलिए वहाँ भजन करने पर मन

भगवान् में एकाग्र नहीं हो सकता है क्योंकि दृष्टि इधर–उधर जाती रहती है । अब इस दशा में भजन कहाँ करें तो भगवत रसिक जी ने ही बताया है कि कोई नदी का किनारा हो परन्तु घाट न हो, जहाँ बहुत से स्त्री-पुरुष स्नान करते हों क्योंकि वहाँ भजन करने पर दृष्टि उनके अंगों पर जायेगी । इसलिए एकान्त नदी के किनारे भजन करने को कहा गया है । इसी प्रकार पर्वत की चोटी पर भजन करना चाहिए जैसे कि मान मन्दिर है, यहाँ स्वाभाविक ही चारों ओर प्राकृतिक छटा का दर्शन होता है । एकान्त बगीचे में भजन करना चाहिए । वन में भजन करना चाहिए जैसे गह्वर वन है । भगवत रसिकजी कहते हैं कि इन स्थानों पर भजन करने से भजन की वृद्धि होती है, भजन विशेष रूप से बढ़ेगा क्योंकि वहाँ अधिक लोगों की भीड़ नहीं होती है । अस्तु, पिछले प्रसंग पर वापस आते हैं कि भक्ति राजस बनती है विषय, यश और ऐश्वर्य से । ऐश्वर्य का अर्थ है मालकियत । ऐश्वर्य शब्द ईशता से बना है । ईशता अर्थात् ईश्वर बनना । ईश्वर का अर्थ है स्वामित्व (मालकियत) । सूरदासजी कहते हैं – **एहि विधि कहा घटैगो तेरो । नन्दनन्दन करि घर को ठाकुर आपुन ह्वै रह्यो चेरो ॥** गृहस्थ हो, घर में रहते हो तो घर में चेरा (दास) बनकर रहना, कभी स्वामित्व (मालकियत) मत लाना । घर में यदि स्वामित्व अथवा मालकियत का भाव रखोगे तो तुम्हारी भक्ति राजस हो जायेगी । हम लोग जहाँ रहते हैं, वहाँ के स्वामी बनना चाहते हैं जैसे महन्त कहता है कि इस आश्रम में मेरी चलेगी, किसी स्थान का अधिकारी कहता है कि यहाँ मेरा शासन चलेगा । गुरु जी कहते हैं कि मेरा शासन माना जाए, शिष्य कहता है कि मेरी बात मानी जाए जैसे परिवार में स्त्री कहती है कि मेरी चलेगी, पति कहता है कि मैं जो कहूँ, वैसा हो । बेटा-बेटी कहते हैं कि हमारी चलेगी, ये सब क्या है ? यह ईशता का झगड़ा है । कोई भी परिवार ऐसा नहीं है, जो सच्चाई के साथ ईशता को छोड़कर चले । जैसे रामजी थे, वे अपने पिता की आज्ञा से जंगल में चले गये लेकिन आजकल एक पिता की सम्पत्ति पर भाई-भाई आपस में झगड़ा करते हैं । इससे पता चलता है कि कोई पितृ भक्त नहीं है, सब ढोंगी हैं । ये ही चीजें भक्ति को राजस कर देती हैं । भक्ति को तामस करने वाली तीन चीजें हैं – हिंसा, दम्भ और मात्सर्य तथा भक्ति को राजस करने वाली तीन चीजें हैं – यश, विषय और ऐश्वर्य । राजस भक्ति के बारे में समझ लो कि ये तीन चीजें हैं तो तुम्हारी भक्ति राजस हो जायेगी । विषयों को छोड़ना ही पड़ेगा । यदि चोरी से विषय भोगते हो तो उससे नुक्सान तुम्हारा है । चोरी से विषय सेवन करोगे तो भक्ति राजस हो जायेगी । वेष तुम्हारा यदि विरक्त का है किन्तु राग विषयों में बना है तो वैराग्य कहाँ है ? तामस और राजस भक्ति के बाद अब समझिये कि भक्ति सात्विक कैसे होती है ? यह भी भागवत में भगवान् कपिल ने बताया है कि तीन चीजें भक्ति को सात्त्विक कर देती हैं । **कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।**

यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥ (भा.३/२९/१०)

कर्मनिर्हार – हमारे कर्म जल जाएँ, हम मुक्त हो जाएँ, इस आस्था के साथ भजन करोगे तो भक्ति सात्त्विक हो जायेगी, गुणातीत नहीं होगी । भगवान् को अर्पण करना – यह भी एक वासना है, जो भक्ति को सात्त्विक कर देगी । कोई इच्छा है, चाहे अच्छी इच्छा भी है तो भी उस अच्छी इच्छा के भाव से यजन या भजन करना भक्ति को सात्त्विक कर देता है । सात्त्विक भक्ति में कर्मनिर्हार और अर्पण के बाद तीसरी चीज है पृथक भाव । पृथक भाव क्या है ? अपने को भगवान् से अलग समझना यानि भगवान् उपास्य हैं और हम उपासक हैं, यह पृथक भाव है । श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनन्य भक्त महाभागवत श्री राय रामानन्द जी के मध्य सर्वोच्च स्तर की भक्ति के सन्दर्भ में एक बार विस्तृत वार्त्तालाप हुआ । जब राय रामानन्द जी ने पृथक भाव की इस सात्त्विक भक्ति का वर्णन किया तो गौरांग महाप्रभु ने उनकी बात को काट दिया और कहा – इसके आगे बोलो । हमारे कर्म नष्ट हो जाएँ, यह स्वार्थ है । हम भगवान् को अर्पण करें, यह भी एक स्वार्थ है । इसमें सूक्ष्म इच्छा होती है । पृथक भाव बना रहता है । इसलिए यह भी सात्त्विक भक्ति हुई । चौथी भक्ति है निर्गुणा भक्ति । इसके बारे में कपिल भगवान् कहते हैं – **मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।**

मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥ (भा.३/२९/११)

मन की गति भगवान् के प्रति अविच्छिन्न हो अर्थात् टूटे नहीं, न तामस भाव आये, न राजस भाव आये और न सात्त्विक भाव आये । इनमें से कोई भाव आएगा तो तुम्हारे मन की गति टूट जायेगी । अविच्छिन्न गति से हम केवल भगवान् का भजन कर रहे हैं, कथा सुन रहे हैं, कीर्तन सुन रहे हैं बिना किसी हेतु के – अहैतुक – हेतु क्या है ? सात्त्विक, राजस और तामस – ये हेतु हैं । इनसे परे जो निर्गुणा भक्ति है, उसका स्वरूप आगे के श्लोक में भगवान् कपिल ने बताया है ।

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ (भा.३/२९/१२)

अहैतुकी भक्ति करो अर्थात् किसी हेतु से भक्ति मत करो । हेतु हैं जैसे तामस हेतु, राजस हेतु और सात्त्विक हेतु । तामस हेतु हैं हिंसा, दम्भ और मात्सर्य । राजस हेतु हैं – विषय, यश और ऐश्वर्य । सात्त्विक हेतु हैं – कर्म निर्हार या भगवान् में अर्पण होने की कोई वासना अथवा स्वार्थ रखना । यह सात्त्विक हेतु है । किसी हेतु को लेकर भक्ति मत करो । देखते रहो कि हमारे अन्दर कोई हेतु तो नहीं आये । तामस हेतु तो नहीं आया है, राजस हेतु तो नहीं आया, सात्विक हेतु तो नहीं आया ।

मंदिर-निर्माण का माहात्म्य

ये ध्यायन्ति सदा बुद्ध्या करिष्यामो हरेर्गृहम् । तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥

जो लोग 'श्रीहरि-मन्दिर निर्माण कराऊँगा,' मन ही मन इस प्रकार संकल्प करता है, उसका पूर्व शतजन्मार्जित पातक विनष्ट होता है। **(श्रीमद्भागवत, स्कन्द 11, अध्याय 11, श्लोकसंख्या 38,39)**

भगवान् श्रीकृष्ण के उद्धव जी के प्रति वचन – मन्दिरों में मेरी मूर्तियों की स्थापना में श्रद्धा रखे। यदि यह काम अकेला न कर सके, तो औरों के साथ मिलकर उद्योग करे। मेरे लिये पुष्पवाटिका, बगीचे, क्रीड़ा के स्थान, नगर और मन्दिर बनवावे।

सम्मार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः । गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद् यदमायया ॥

सेवक की भाँति श्रद्धाभक्ति के साथ निष्कपट भाव से मेरे मन्दिरों की सेवा-शुश्रूषा करे–झाड़े-बुहारे, लीपे-पोते, छिड़काव करे और तरह-तरह के चौक पूरे।

(श्रीमद्भागवत, स्कन्द 11, अध्याय 27, श्लोकसंख्या 50-55)

मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम् । पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥

भगवान् श्रीकृष्ण के उद्धव जी के प्रति वचन – यदि शक्ति हो तो उपासक सुन्दर और सुदृढ़ मन्दिर बनवाये, उसमें मेरी प्रतिमा स्थापित करे, सुन्दर-सुन्दर फूलों के बगीचे लगवा दे; नित्य की पूजा, पर्व की यात्रा और बड़े-बड़े उत्सवों की व्यवस्था कर दे।

पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम्। क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात्॥

जो मनुष्य पर्वों के उत्सव, प्रतिदिन की पूजा लगातार चलने के लिये खेत, बाजार, नगर अथवा गाँव मेरे नाम पर समर्पित कर देते हैं, उन्हें मेरे समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् । पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥

मेरी मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य, मन्दिर-निर्माण कराने से त्रिलोकी का राज्य, पूजा आदि की व्यवस्था करने से ब्रह्मलोक और तीनों के द्वारा मेरी समानता प्राप्त होती है।

भक्तिमती श्रीवृन्दाप्रियाजी का साक्षात्कार
(श्रीमती विनीता श्रीवास्तव, सिंगापुर)

सिंगापुर में निवासरत श्रीमती विनीता श्रीवास्तव (वृंदाप्रियाजी) एवं उनके पति श्रीराजीव श्रीवास्तवजी परम वैष्णवभाव से ओतप्रोत होकर साधु-संतों, वैष्णवजनों, ब्रजवासियों तथा गोवंश की सेवा में निरंतर संलग्न हैं । उनके द्वारा अनेकों गोवंश, मंदिरों तथा वैष्णव-समाज से जुड़ी कल्याणकारी एवं जनहितकारी योजनाओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया गया है । दोनों ने अपना सम्पूर्ण जीवन भगवद्भक्ति, वैष्णव-परम्परा, ब्रजभूमि व गौमाता के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए समर्पित कर रखा है। अपनी आय का एक बड़ा हिस्सा वे निष्काम भाव से श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तों की सेवा में अर्पित कर देते हैं । श्रीमाताजी गौशाला में स्थित हजारों गोवंश की सेवा वे भक्त दम्पत्ति कई वर्षों से अनवरत कर रहे हैं, जो उनके समर्पण और संकल्पित सेवा का अद्वितीय उदाहरण है । विगत् चालीस वर्षों से श्रीमानमंदिर से जुडे श्रीमती विनीता एवं श्रीराजीव श्रीवास्तवजी सेवा का पर्याय बन चुके हैं । उनकी निष्ठा, त्याग और समर्पण ने उन्हें वैष्णवसमाज में आदर्श स्थान प्रदान किया है । श्रीवृंदाप्रियाजी के साथ साक्षात्कार के अंश यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

श्री राधे राधे — सबसे पहले तो आप अपना परिचय दे दें ।

श्रीवृंदाप्रियाजी : मेरा नाम वृंदाप्रिया (विनीता श्रीवास्तव) है । मैं सिंगापुर की नागरिक हूँ, लेकिन जब भी मुंबई और ब्रज आ सकती हूँ, आती हूँ । भारतवर्ष में थोड़ा-सा कुछ कर सकूँ, भारत और सनातन धर्म के लिए यदि कुछ कर पाऊँ तो बस यही मेरी इच्छा है।

* अच्छा, अभी आप जो ब्रज में आ रही हैं, तो आपका अनुभव कैसा रहा ? *

श्रीवृंदाप्रियाजी : ब्रज में घर से भी अधिक अच्छा लगता है । जो प्रेम ब्रजवासियों से मिलता है, वह कहीं और नहीं मिलता । यहाँ की दुनिया बहुत विशिष्ट है । मेरी हिन्दी इतनी अच्छी नहीं है, बीच-बीच में अंग्रेजी शब्द चले जाते हैं, परन्तु हम सब प्रेम के प्यारे हैं और भगवान् के चरणों में जो अनुभूति मिलती है, वह अद्भुत है ।

तो आप बताइए कि ब्रज में आपको इतना अच्छा अनुभव क्यों हो रहा है और क्या ब्रज के प्रति आपकी कोई भावनाएँ या कुछ करने की इच्छाएँ हैं ?

श्रीवृंदाप्रियाजी : थोड़ी-सी बातें हैं । एक तो श्रीलीलास्थलियों का अनुभव — जब मैं इस वर्ष जनवरी में ब्रज में आयी थी और श्रीकृष्ण की लीलास्थलियों पर गयी, तो ऐसा लगा कि वहाँ भगवान् की ऊर्जा अभी भी मौजूद है । इसलिए इन स्थानों को संरक्षित रखना और सेवाएँ करना चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इनका लाभ उठा सकें । अगर मैं इन स्थलियों की सेवा कर सकूँ तो यह मेरे लिए बहुत बड़ी बात होगी । एक बार जब किसी को यह अनुभव हो जाता है, तो वह जीवनभर साथ रहता है । भगवान् की कृपा से मन में एक क्षण में ही वह स्थान का विचार आ जाता है और हम वहाँ मानसिक रूप से पहुँच जाते हैं । लेकिन अगर कोई वहाँ नहीं जाएगा और अनुभव नहीं करेगा तो वह समझ नहीं पाएगा कि वह चीज़ क्या है — यह बिल्कुल अद्भुत है ।

* आपको शायद जानकारी होगी कि पुराणों में भी ब्रज की महत्ता बताई गई है । शाण्डिल्य ऋषि के पास वज्रनाभजी गये थे और शास्त्रों में वर्णित है कि शाण्डिल्य ऋषि ने कहा कि ब्रज के लिए सबसे बड़ा कार्य यही है — लीला स्थलों, कुंडों, सरोवरों और तीर्थ स्थलों को पुनः प्रकट करना और उनका उद्धार करना। इससे बड़ी कोई सेवा नहीं है। समय के साथ ये चीजें लुप्त होती जा रही थीं, इसलिए यह कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण था। लीला स्थल ही हमें भगवान् की उपस्थिति का अनुभव कराते हैं और उनकी लीलाओं का अनुभव कराते हैं। यहाँ भगवान् की अनुभूति स्पष्ट रूप से होती है। यहाँ बिजवारी गाँव नंदगाँव के निकट है; वहाँ एक प्राचीन सरोवर है जो बहुत सुंदर है । कहा जाता है कि वह सरोवर गोपियों के आँसुओं से बना है । जब गोपियाँ कृष्ण को लेने आईं और अक्रूर जी उन्हें ले जा रहे थे, तो गोपियों की छाती

पर बज्र-सा चल गया था, इसलिए उस गाँव का नाम बिजवारी पड़ा । गोपियों की तड़प इतनी अधिक थी कि उनके आँसुओं से वह कुण्ड बन गया । आप उस कुण्ड का दर्शन करेंगे तो अभी भी वहाँ का जल बहुत मीठा है। हमने १५ दिन पहले जाकर देखा था कि ऐसे कई कुण्ड उपेक्षित पड़े हुए हैं; इनकी भी सेवा की जा सकती है । आपका रुख गाय माता के बारे में क्या है ?* श्रीवृंदाप्रियाजी : यह लीला स्थलों के अलावा एक और बड़ी चिंता है — पूरे भारत में गाय माता का सम्मान और देखभाल ठीक से नहीं हो रही है। गायें यहाँ-वहाँ भटक रही हैं, प्लास्टिक खा रही हैं; यह देखकर बहुत दुःख होता है। बरसाने में श्री ब्रजशरण बाबा आदि बहुत सेवा कर रहे हैं; मैं उनकी सेवा में यदि कुछ सहयोग कर सकूँ तो स्वयं को भाग्यशाली समझूँगी । एक और विचार शिक्षा के बारे में है - यह मेरी पहले से ही इच्छा थी, ब्रज आने से पहले भी । पूरे भारत में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ मुझे यह लगती है कि हमारे बच्चों की शिक्षा आध्यात्मिक होनी चाहिए। अगर बच्चों की शिक्षा भक्ति से युक्त नहीं होगी तो आगे कौन हमारी संस्कृति और लीलास्थलों की देखभाल करेगा ? लीलास्थलों की रक्षा बहुत महत्वपूर्ण है। जब से विदेशी आक्रमण और आधुनिकता आई है, हमारी संस्कृति से दूरी बढ़ी है; इसे वापस लाना होगा । मैंने कई लोग देखे हैं जो विद्यालय खोल रहे हैं और भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा प्रदान कर रहे हैं; इसकी बहुत ज़रूरत है । मुझे लगता है कि आजकल के बच्चों को अनिवार्य रूप से अंग्रेज़ी माध्यम में नहीं भेजना चाहिए; इतिहास और भूगोल की पुस्तकों में भी सुधार की आवश्यकता है । पहले बच्चों को उनके स्वाभाविक कौशल के अनुसार पढ़ाया जाता था — हर बच्चे में कोई न कोई प्रतिभा होती है, उसी के अनुसार उन्हें निपुण बनाया जाता था । यह पद्धति वापस लाई जानी चाहिए । आजकल शिक्षा बहुत भौतिकतावादी हो गई है और इसीलिये बच्चों में आत्मविश्वास की कमी बढ़ रही है । कई बच्चे सोचते हैं कि हम योग्य नहीं हैं — यह बहुत हानिकारक है । भगवान् ने हमें जो गुण दिए हैं, वे हर व्यक्ति में हैं। मानसिक रोगों का प्रसार भी बढ़ रहा है; हमारे बच्चे, जो अच्छे स्कूलों में पढ़ते हैं जहाँ फीस बहुत अधिक है, वे भी मानसिक रोगों की दवाइयाँ लेते हैं — OCD, anxiety, depression जैसी समस्याएँ तीसरी-चौथी कक्षा के बच्चों में भी देखी जा रही हैं। शायद गाँवों में यह स्थिति अभी इतनी बुरी नहीं है, पर शहरों और पश्चिमी दुनिया में यह पहले से ही फैल चुकी है। यह एक तरह का कैंसर बनकर पूरे समाज में फैल रहा है और हमारी शिक्षा प्रणाली को भी प्रभावित कर रहा है। हमें अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति लौटानी होगी, क्योंकि जो भी काम हम करेंगे, उसकी देखभाल कौन करेगा — ये वर्तमान के बच्चे ही करेंगे। इसलिए आध्यात्मिक शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है । गाय माता की देखभाल और सनातन संस्कृति से युक्त शिक्षा हर पाठशाला के साथ जुड़ी होनी चाहिए; श्रीभगवान् की आराधना (प्रार्थना) व संगीतमय संकीर्तन का अभ्यास भी होना चाहिए ताकि बच्चों का मन भगवद्भक्ति में मजबूत बने और वे भविष्य में समाज की सम्यक् सेवा कर सकें । यह मेरे जीवन की एक उत्कट अभिलाषा है ।

बहुत सुंदर विचार हैं। हम राधारानी से यही प्रार्थना करेंगे कि आपकी यह सेवा सफल हो ।

परम पूज्य श्रीबाबामहाराजजी के प्रथम दर्शन आपको कब प्राप्त हुए और उनसे साक्षात्कार के बाद आपको कैसी अनुभूति हुई ?

श्रीवृंदाप्रियाजी : मैं बहुत छोटी थी, लगभग १५-१६ वर्ष की, जब हमारे गुरु श्रीराधानाथमहाराज, मुझे और कुछ अन्य भक्तों को पूज्य श्रीरमेशबाबाजीमहाराज के दर्शन कराने तथा उनके रात्रि भजनों में सम्मिलित होने के लिए ले गये । यह मेरे जीवन का सबसे अद्भुत और मंत्रमुग्ध कर देने वाला अनुभव था – 'बाबा को गाते हुए सुनना ।' पूज्य बाबा महाराज मेरे प्रति अत्यन्त दयालु रहे और हमेशा अपार कृपा बरसाते रहे । मैंने उनसे अपने जन्मदाता पिता से भी अधिक प्रेम अनुभव किया । यही कारण था कि मुझे उनके पास घर जैसा अपनापन मिला और मैं समय-समय पर बाबामहाराज के दर्शन हेतु जाती रही । बाबा ने मुझे इतना पितृवत् स्नेह दिया और इतनी कृपा की कि उन्होंने पहली बार बरसाना के ब्रजवासियों को मुंबई भेजा, ताकि वे मेरे विवाह में भजन गाएँ । मैं सदा बाबा महाराज और उनके भक्तों की इस मधुर प्रेममयी कृपा के लिए कृतज्ञ रहूँगी । यह प्रेम इस संसार का नहीं है । मुझे ऐसा लगता है कि बाबामहाराज के चरणों में ही मेरा घर है, मैं इसके योग्य नहीं हूँ, फिर भी वे मुझ पर अपनी कृपा की वर्षा करते हैं ।

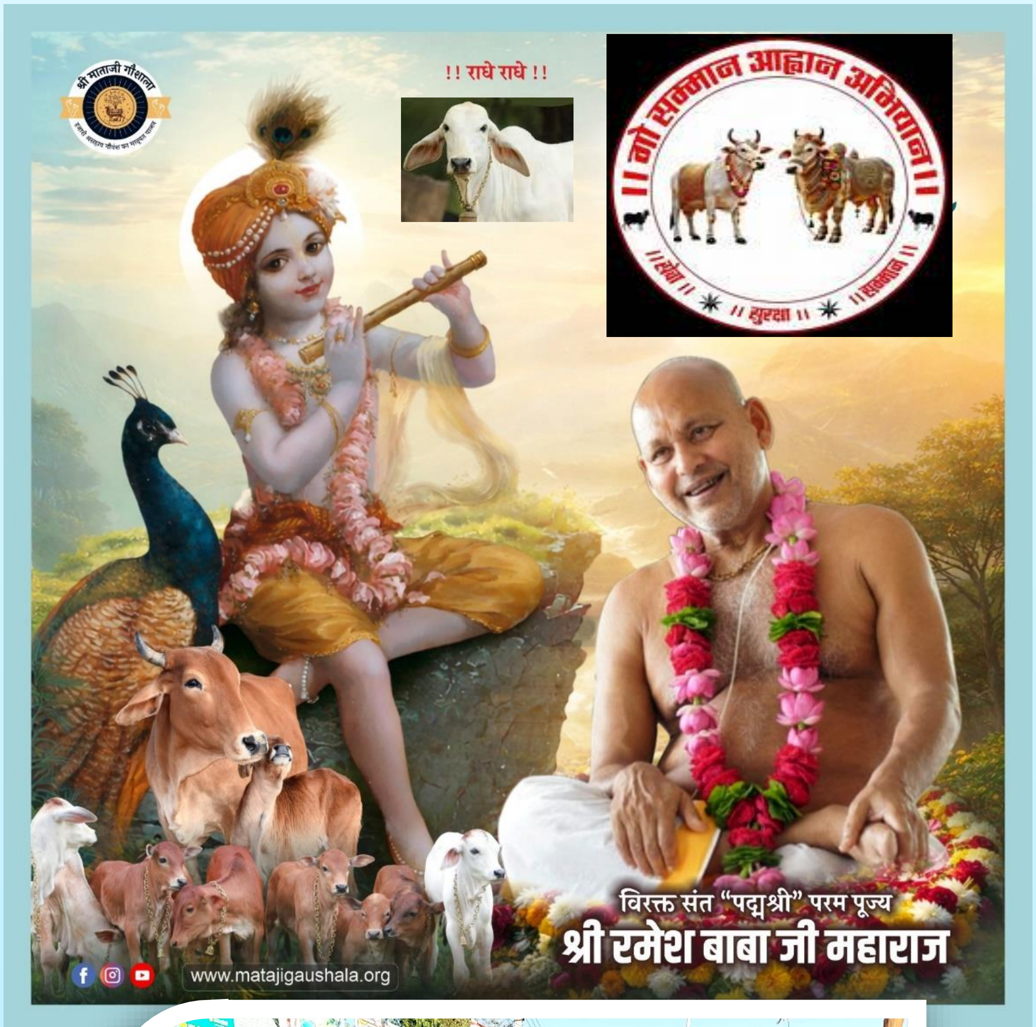

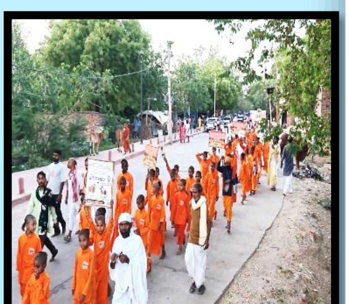

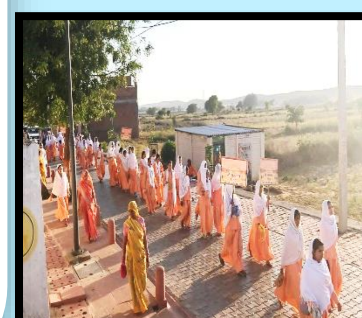

श्री माताजी गौशाला
गौ सम्मान
आह्वान अभियान

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित,AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26